॥ श्रीहरिः ॥

आदर्श नारी सुशीला

एक शिक्षाप्रद कहानी

जयदयाल गोयन्दका

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR [SINCE 1923]

290

॥ श्रीहरिः ॥

आदर्श नारी सुशीला

एक शिक्षाप्रद कहानी

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

जयदयाल गोयन्दका

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

आदर्श नारी सुशीला

(१)

श्रीमद्भगवद्गीतामें मनुष्यको आत्मकल्याणार्थ दैवी सम्पदा धारण करनेके लिये कहा गया है (१६।५)। अतः कल्याणकामी मनुष्यको दैवी सम्पदामें बतलाये हुए सद्गुण-सदाचारोंको अमृतके समान समझकर उनका सेवन करना चाहिये। गीतामें सोलहवें अध्यायके आरम्भमें ही तीन श्लोकोंमें भगवान्‌ने सद्गुण-सदाचारोंके साररूप दैवी सम्पदाके छब्बीस लक्षण इस प्रकार बतलाये हैं—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥

(१) भयका सर्वथा अभाव, (२) अन्तःकरणकी पूर्ण निर्मलता, (३) तत्त्वज्ञानके लिये ध्यानयोगमें निरन्तर दृढ़ स्थिति और (४) सात्त्विक दान, (५) इन्द्रियोंका दमन, (६) भगवान्, देवता और गुरुजनोंकी पूजा तथा अग्निहोत्र आदि उत्तम कर्मोंका आचरण एवं (७) शास्त्रोंका पठन-पाठन तथा भगवान्‌के नाम और गुणोंका कीर्तन, (८) स्वधर्मपालनके लिये कष्ट-सहन और (९) इन्द्रियोंके सहित अन्तःकरणकी सरलता, (१०) मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना, (११) प्रिय और यथार्थ भाषण, (१२) अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोधका न होना, (१३) कर्मोंमें

स्वार्थका और कर्तापनके अभिमानका त्याग, (१४) अन्तःकरणकी उपरति अर्थात् चित्तकी चंचलताका अभाव, (१५) किसीकी भी निन्दादि न करना, (१६) सब भूतप्राणियोंमें हेतुरहित दया, (१७) इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेपर भी उनमें आसक्तिका न होना, (१८) कोमलता, (१९) लोक और शास्त्रसे विरुद्ध आचरणमें लज्जा और (२०) व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव, (२१) तेज, (२२) क्षमा, (२३) धैर्य, (२४) बाहरकी शुद्धि एवं (२५) किसीमें भी शत्रुभावका न होना और (२६) अपनेमें पूज्यताके अभिमानका अभाव—ये सब हे अर्जुन! दैवी सम्पदाको लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण हैं।

प्रत्येक भाई-बहिन इन दैवी सम्पदाके छब्बीस लक्षणोंको अपनेमें भलीभाँति धारण करनेका कुछ तरीका जान सकें, इसके लिये यहाँ एक कहानी लिखी जाती है—

प्रयागमें एक ब्राह्मण रहते थे, उनका नाम था देवदत्त। वे बड़े ही विद्वान्, सरलस्वभाव, सदाचारी और ईश्वरभक्त थे। राज्यके अधिकारियोंमें भी उनका बड़ा सम्मान था। उनकी पत्नीका नाम था गौतमी। वह बड़ी ही सरल, सीधी, भोले स्वभावकी तथा अक्षरज्ञानरहित थी। उसे एकसे सौतककी गिनतीतक नहीं आती थी। उसके तीन पुत्र और एक कन्या थी। बड़े लड़केका नाम सोमदत्त, बिचलेका रामदत्त और सबसे छोटेका मोहनलाल था। तीनों ही सुशिक्षित और सदाचारी थे। लड़कीका नाम था रोहिणी। इन सभीके विवाह हो चुके थे। रोहिणीके पतिका देहान्त छोटी उम्रमें ही हो गया तथा उसके कोई संतान नहीं हुई, इसलिये वह नैहरमें ही रहती थी। लड़कोंकी पत्नियोंके नाम क्रमशः रामदेवी, भगवानदेवी और सुशीला थे। इनमेंसे पहली दो स्त्रियाँ तो अनपढ़ और मूर्ख थीं, किंतु सुशीला बड़ी विदुषी थी; वह अपने नामके अनुसार ही बड़ी शीलवती थी। वह अत्यन्त

शान्तस्वभाव, सद्गुण-सदाचारसम्पन्न, ईश्वरभक्त और पतिव्रता थी। वह सभी कार्योंमें चतुर और सुशिक्षिता थी। वह कटाई-सिलाई करने, कसीदे काढ़ने, कपड़ोंपर बेल-बूटे बनाने, गंजी-मोजे बनाने, सुन्दर लिपि लिखने तथा चित्रकारी आदि शिल्प-विद्यामें भी बड़ी निपुण थी। उसमें त्याग, सेवाभाव, धैर्य और कार्यकुशलता आदि गुण विशेषरूपसे थे। जबसे सुशीला घरमें आयी तबसे घरमें मानो सुव्यवस्था आ गयी। उसने सभीको निःस्वार्थ सेवासे मुग्ध करके अपने अनुकूल बना लिया। वह सभीके साथ बड़े प्रेमसे यथायोग्य बर्ताव किया करती। बड़ोंका आदर करती, अपनेसे छोटोंपर दया और स्नेह रखती तथा समान वयकी स्त्रियोंसे मैत्री करती थी। घरवाले तो सब उसके काम-काज और शील-स्वभावसे संतुष्ट रहते ही थे, मुहल्लेके अन्य स्त्री-पुरुष भी उसके गुणोंसे प्रभावित होकर सदा उसकी प्रशंसा किया करते। सुशीला यद्यपि छोटी उम्रकी और नववधू थी, पर उसके गुणोंकी इतनी ख्याति हो गयी कि दूर-दूरकी स्त्रियाँ उससे सलाह और शिक्षा लेने आया करती थीं।

पण्डित देवदत्तजी नित्य नियमितरूपसे संध्या, गायत्री, पूजा-पाठ और जप-ध्यान किया करते। वे उपदेश, व्याख्यान और पण्डिताईसे अपने घरकी जीविका चलाते थे। उनके दोनों बड़े लड़के नगरमें ही व्यापार-कार्य किया करते और जो कुछ उससे प्राप्त होता, पिताजीको सौंप देते थे। छोटा लड़का मोहनलाल कॉलेजमें पढ़ता था। घरमें जो कुछ भी भोजन-खर्च लगता, उसके लिये पण्डितजी प्रतिमास अपनी पत्नीको कुछ रुपये दे दिया करते, जिनसे वह अपने रसोइये या नौकरके द्वारा बाजारसे आवश्यक सामान मँगवा लिया करती। गौतमीको अत्यन्त भोली समझकर रसोइया और नौकर दोनों ही बेईमानी और चोरी करते थे। वे जिस चीजका जो दाम बतला

देते, वह उतना ही उन्हें दे देती। फिर रुपये-पैसे भी वे ही दोनों गिनते; क्योंकि गौतमीको तो गिनती आती नहीं थी। वे रुपये माँगकर ले जाते और थोड़ी-सी चीज लाकर ही कह देते कि रुपये सब पूरे हो गये। कभी मोटा-मोटी हिसाब बतला देते, कभी नहीं। बतलाते तो भी गौतमी तो कुछ समझती थी नहीं।

बुद्धिमती सुशीलाको उनकी चोरी-चालाकी समझनेमें देर नहीं लगी। उसने सोचा—सासजीका स्वभाव सरल और भोला होनेके कारण ये हमारे घरका धन लूट रहे हैं । इसका कोई उपाय करना चाहिये। आखिर, उसने एक दिन रसोइयासे कहा—'महाराजजी! आप बाजारसे जो गेहूँ, चावल, दाल, साग, घी, तैल और मसाला आदि सामान लाते हैं, उन सबका पूरा हिसाब रखना चाहिये।' रसोइयाने कड़ककर कहा—'वाह! तू बड़ी हिसाब लेनेवाली आयी! हमारे यहाँ तो यों ही सारा काम विश्वासपर चलता है। तेरी सास इतनी बड़ी हो गयी, पर बेचारीने कभी कोई हिसाब नहीं माँगा और तू कलकी आयी हुई हम घरके लोगोंसे हिसाब माँगने लगी। मालूम होता है, अब तू ही घरकी मालकिन हो गयी है?' वधूके प्रति रसोइयाके तिरस्कार-सूचक कड़े शब्द बगलके कमरेमें बैठे हुए पण्डित देवदत्तजीके कानोंमें पड़े। उन्होंने स्वाभाविक ही बड़े धीरजके साथ रसोइयाको सम्बोधन करके कहा—'भैया! बहू तो ठीक ही कहती है, उसकी सीधी बातपर यों कड़कना और डाँटना तो उचित नहीं है। तुम जो हिसाब नहीं देते, यह अच्छी बात थोड़े ही है। रुपयोंका हिसाब तो पाई-पाईका होना चाहिये। जो भी कुछ हो, अब तुम छोटी बहूको सब बतला दिया करो। यह लिखी-पढ़ी है, सब हिसाब लिख लिया करेगी।' उन्होंने फिर बहूसे कहा—'बेटी! तुम्हारी सास तो भोली है, अब तुम्हीं घरका हिसाब रखा करो।' सुशीला तो यह चाहती ही थी। वह लेन-देनका पूरा-पूरा हिसाब रखने

लगी। रसोइया तथा नौकर दोनोंसे ही जो भी बाजारसे सामान मँगाया जाता, वह उनसे पूछकर सारा हिसाब लिख लिया करती।

उसकी सेवा, स्वभाव और गुणोंके कारण घरभरके सभी स्त्री-पुरुष बड़े मुग्ध थे, किंतु स्वार्थी रसोइया और नौकर उसे अपने पथका रोड़ा समझकर उससे द्वेष करने लगे। वे बात-बातमें उसमें छिद्रान्वेषण किया करते और घरकी अन्य स्त्रियोंके मनोंको भी खराब करते रहते। कभी-कभी तो वे ताना भी मार देते कि 'तुम सभीपर तो यह सुशीला मालकिन है। देखो न! यह आयी तुम्हारे सामने और अब तुमपर हुकुम चलाने लगी है।' परंतु वे कहतीं—'यह बेचारी तो हम सभीके हुकुमके अनुसार चलती है और बहुत ही सुशील है, तुम व्यर्थ ही ऐसा क्यों कहते रहते हो?' पर वे तो उसके पीछे पड़े हुए थे, जब अवसर पाते, उसपर झूठा दोष आरोपकर घरवालोंको लगाया-बुझाया करते। ऐसा होनेपर भी सुशीलाके चित्तपर कभी विक्षेप या अशान्ति[१४] देखनेमें नहीं आयी, वह तो हर समय प्रसन्नचित्त रहा करती, किंतु अन्य स्त्रियाँ मूर्ख थीं, अतः बार-बार उनकी बातें सुननेसे उन स्त्रियोंपर उनका असर होने लगा। रसोइया और नौकरोंकी बातोंको सच्ची मानकर वे स्त्रियाँ घरके पुरुषोंको भी सुशीलाके विपरीत अनेक तरहकी बातें कहने लगीं, किंतु सुशीलाके गुणोंसे प्रभावित होनेके कारण पुरुषोंपर उनकी बातोंका कुछ भी असर नहीं हुआ।

कुछ समयके बाद सुशीलाके एक कन्या हुई, उसका नाम रखा गया इन्द्रसेनी। इसके दो वर्ष बाद एक लड़का हुआ; जिसका नाम पण्डितजीने इन्द्रसेन रखा। लड़केके जन्मके कुछ दिनों बाद सोमदत्त आदिने अनेक बन्धु-बान्धव और मित्रोंको बुलाकर उनकी बाजारू मिठाई, बीड़ी, सिगरेट आदिसे खातिर की और वे सभी चौपड़-ताश खेलने, हँसी-मजाक करने और हो-हल्ला मचाने लगे। घरमें

धूम मच गयी। यह सब देखकर सुशीलाने विनयपूर्वक प्रार्थना की—'यह सब किसलिये कराये जाते हैं?' घरवालोंने कहा—'यह तो यहाँकी प्रथा है। लड़केकी रक्षाके लिये उत्सव मनाया जाता है।' बहूने हाथ जोड़कर विनयसे कहा—'इससे तो बुरे संस्कार पड़ते हैं, पैसे भी व्यर्थ खर्च होते हैं और हो-हल्ला होनेसे मुझे नींद भी कम आती है। अतः मुझे तो इसमें सिवा हानिके कोई भी लाभ नहीं दीखता। मेरे नैहरमें तो बहुत अच्छी प्रथा है। वहाँ तो नामकरण-संस्कार होनेके बाद वेद और गीताका पाठ, कथा-कीर्तन आदि हुआ करते हैं। धर्मात्मा, भक्त, दानी, परोपकारी और शूरवीर पुरुषोंकी कथाएँ सुनायी जाती हैं, जिससे बड़ी ही अच्छी शिक्षा मिलती है। इसलिये मेरी तो आपसे यही प्रार्थना है कि इन प्रमादके कार्योंको बंद करा दिया जाय।' सुशीलाके इन विनययुक्त वचनोंका उनपर अच्छा असर पड़ा। उन्होंने तुरंत वे सब बंद करके सुशीलाके कहे अनुसार सारी व्यवस्था कर दी।

घरमें और कोई लड़का न होनेके कारण गौतमी उस लड़केसे विशेष प्यार किया करती। उसने उसके हाथों और पैरोंमें काले डोरे बाँध दिये और गलेमें एक झालरा पहना दिया, जिसमें व्याघ्रनख, लाख और लोहेकी अँगूठी, ताबीज तथा जरखनख आदि पिरोये हुए थे। थोड़े समय बाद वे डोरे लड़केके हाथ-पैरोंकी कलाइयोंमें कुछ-कुछ धँसकर इस प्रकार बैठ गये कि उनमें निशान पड़ गये तथा उस झालरेसे छाती और पीठपर कई जगह निशान पड़ गये। यह देखकर सुशीलाने साससे कहा—'माताजी! बच्चेके हाथ-पैरोंमें ये डोरे क्यों बाँधे गये हैं? इससे तो इसके हाथ-पैर भी कमजोर रह जायँगे और उनमें निशान भी पड़ गये हैं तथा यह झालरा रातको इसके बदनमें गड़ जाता है, इससे भी कई जगह निशान पड़ गये

हैं। इनके बाँधनेसे क्या लाभ है?'

गौतमी बोली—'डाकिनी, पूतना आदिके नजरका दोष बचानेके लिये लड़केकी रक्षाके हेतु ये बाँधे जाते हैं।' तब सुशीलाने पूछा—'आपने इन्द्रसेनीको तो ये कभी नहीं पहनाये?'

गौतमीने उत्तर दिया—'लड़कियोंकी रक्षा तो भगवान् करते हैं। इसलिये उनके यह सब बाँधनेकी आवश्यकता नहीं।' सुशीलाने हाथ जोड़कर बड़ी ही विनयसे कहा—'माताजी! भगवान् तो सबकी ही रक्षा करते हैं। जो भगवान् इन्द्रसेनीकी रक्षा करते हैं, वही इसकी भी रक्षा करेंगे! इसके लिये हमलोगोंको इतनी चिन्ता क्यों करनी चाहिये, इन सब कार्योंसे तो उलटा भगवान्पर अविश्वास ही प्रकट होता है तथा कोई लाभ भी नहीं दीखता।'

सुशीलाकी ये युक्ति-युक्त बातें गौतमीको भी जँच गयीं और उसने बच्चेके गलेसे वह झालरा और हाथ-पैरोंके डोरे उसी दिन निकाल दिये।

(२)

कुछ दिनोंके पश्चात् हरद्वारमें कुम्भका मेला लगा। सब लड़कोंने मिलकर पण्डितजीके सामने प्रस्ताव रखा कि आपकी अनुमति हो तो सब लोग कुम्भ-मेलेपर हरद्वार चलें। इसपर पण्डितजीने कहा—'बहुत ही अच्छा है, हम भी चलेंगे।' फिर क्या देर थी, तुरंत तैयारी हो गयी और घरका प्रबन्ध करके वे समस्त परिवारसहित चल पड़े। चलते समय सुशीलाने सबसे प्रार्थना की—'मेलेमें ठग, चोर, कुटनियाँ और लुटेरे भी आया करते हैं, उन सबसे बहुत सावधान रहना चाहिये। किसी भी अपरिचित स्त्री-पुरुषसे कभी सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहिये। किसीकी दी हुई वस्तु स्वीकार नहीं करनी चाहिये और न किसी अपरिचितका विश्वास ही करना चाहिये। यात्रामें खान-पानमें संयम

रखना और सदा धैर्य तथा विवेकसे काम लेना उचित है। किसीके भी सामने कमजोर और डरपोक नहीं बनना, अपितु धैर्यपूर्वक उत्साह और साहससे काम निकालना चाहिये।'

रास्तेमें सब लोगोंने अयोध्याजी उतरकर स्नान, दर्शन करनेका विचार किया और वे वहाँ जाकर एक धर्मशालामें ठहर गये। सब लोगोंने सरयूमें स्नान करके मन्दिरोंमें जाकर भगवान्‌के दर्शन किये और फिर धर्मशालामें आ गये। रसोइया धर्मशालाके बाहर चबूतरेपर बैठा था। वहाँ एक ठगने आकर उससे कहा—'मैं तुम्हें एक मसाला देता हूँ, इसे तुम दालमें डाल दोगे तो दाल बहुत बढ़िया बन जायगी और उसे खानेपर सब घरवाले तुम्हारे वशमें हो जायँगे।' रसोइया तो मूर्ख था ही, उसने उससे वह मसाला ले लिया और कुछ दालमें डाल दिया तथा बाकी बचा हुआ पुड़ियामें बाँधकर अलग रख दिया। भोजन तैयार होनेपर सोमदत्त और रामदत्त दोनों भाई, इन्द्रसेन, इन्द्रसेनी और बहिन रोहिणीने भोजन किया। भोजन करते ही वे सब बेहोश हो गये। यह देखकर सुशीलाने निश्चय किया कि अवश्य ही भोजनमें कुछ-न-कुछ गड़बड़ी है, नहीं तो ये सभी बेहोश कैसे होते?

वह तत्काल रसोईघरमें गयी और देखा कि एक कागजकी पुड़ियामें धतूरेके बीज रखे हैं। उसने रसोइयासे पूछा—'आपने आज यह क्या खिला दिया, जिससे खानेवाले सब बेहोश हो गये?' रसोइयाने कहा—'कुछ नहीं।' सुशीला बोली—'कुछ नहीं तो ये बेहोश कैसे हुए? आप सच्ची बात बतला दीजिये, नहीं तो आपपर कानूनी काररवाई की जायगी।' यह कहकर सुशीलाने उसे धतूरेके बीज दिखलाये और कहा—'यह क्यों लाये गये हैं?' रसोइया बोला—'एक सज्जन आये थे, वे मुझे बीस रुपये तो दानस्वरूप भेंट कर गये और यह मसाला दे गये कि इसे दालमें डाल देनेसे दाल बढ़िया हो जायगी और

उसे खाकर सब प्रसन्न हो जायँगे। मैंने मसालेको देखा नहीं, कुछ तो दालमें डाल दिया था और कुछ पुड़ियामें रख दिया।'

सुशीलाने तुरंत सारी बातें अपने पतिसे कही और शीघ्र उपचार करनेके लिये निवेदन किया। मोहनलालने पण्डितजीसे कहा। सब सुनकर पण्डितजीको बड़ा खेद और आश्चर्य हुआ। उन्होंने चिकित्साके लिये उसी क्षण अच्छे वैद्योंको बुला भेजा और फिर रसोइयाको बुलाकर उसे डाँटा-धमकाया—'तुमने हम सबको मार डालनेका विचार किया था, तुम्हें पुलिसमें देना चाहिये।' इसपर उसने उनसे क्षमा-प्रार्थना की, तब पण्डितजीने उसे क्षमा करते हुए कहा—'भविष्यमें किसीके साथ ऐसा काम कभी नहीं करना।' इतनेमें वैद्य आ पहुँचे और तत्काल अनुकूल चिकित्सा हो जानेसे सभी लोग बच गये। सबने सुशीलाकी प्रशंसा की।

दूसरे दिन वे वहाँसे चल पड़े। गाड़ी ज्वालापुर पहुँची। बच्चे प्यासे थे, इसलिये सुशीला उन्हें लेकर पानी पिलाने नीचे उतरी। इतनेमें गाड़ी खुल गयी और वह स्टेशनपर रह गयी। घरके लोगोंने जंजीर खींची, पर वह बिगड़ी होनेसे गाड़ी नहीं रुकी। पण्डित देवदत्तजी एवं अन्य सब लोग हरद्वार पहुँचे। शहरमें सब जगह रुकी हुई थी, इसलिये वे गंगाजीके किनारे तंबू डालकर उन्हींमें टिक गये; किंतु बालकोंसहित सुशीलाके छूट जानेसे बड़ी चिन्तामें पड़ गये और उसकी खोज करने लगे।

इधर सुशीला घबरायी नहीं, वह बच्चोंको गोदमें लिये पैदल ही चलकर ज्वालापुरसे हरद्वार आ गयी और एक मन्दिरमें जाकर ठहर गयी। उसने विद्वान् पुजारीजीसे अपना सारा हाल संस्कृतमें ही कह सुनाया। पुजारीजीपर उसकी विद्वत्ताका बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने उसे वहाँ ठहरनेके लिये स्थान दे दिया। तब उसने बहुत-से कागज

मँगवाकर उनपर अपने ज्वालापुरसे यहाँ आकर मन्दिरमें ठहरनेकी बात लिखी और मन्दिरका पता आदि लिख दिया। पुजारीजीकी सहायतासे परोपकारी स्वयंसेवकोंद्वारा वे विज्ञापन शहरके प्रधान-प्रधान स्थानोंपर चिपकवा दिये गये तथा पुलिसमें सूचना पहुँचा दी गयी। इससे यह समाचार तुरंत ही सब जगह फैल गया। घरवाले खोज कर ही रहे थे । पता लगते ही मन्दिरमें जाकर उसे ले आये। उसकी इस अद्‌भुत कार्यकुशलता और धीरजको देखकर घरवालोंको बड़ी प्रसन्नता हुई।

वहाँ मेलेकी भीड़के कारण उन लोगोंको शुद्ध दूध नहीं मिला और उन्हें वहाँ कुछ दिन ठहरना था, अत: दो सौ रुपयोंमें एक गाय खरीदी गयी और वे वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे। वे रातमें पारी-पारीसे जागकर पहरा दिया करते थे। एक दिनकी बात है, सुशीलाका पहरा था, रातके चार बजे थे। उस समय चोर आया और वह गायको खोलकर ले जाने लगा। सुशीला बड़ी दूरदर्शिका थी। उसने पहलेसे ही तंबूमें एक घण्टा मँगवाकर रख छोड़ा था और घरवालोंको बता रखा था कि 'कोई चोर आदि आयेगा या कोई विपत्ति आयेगी तो मैं जोरसे घण्टा बजाऊँगी।' जोरोंसे चिल्लानेपर लज्जा जाती है और सूचना न देनेपर विपत्ति नहीं हटती, चोर धन ले जाता है; इसीलिये सुशीलाने पहलेसे सोचकर यह व्यवस्था की थी। उसने चोरको देख लिया और तुरंत बड़े जोरोंसे घण्टा बजाने लगी। घण्टाकी ध्वनि सुनते ही सब घरवाले चौंक पड़े और सबने एक साथ ही हल्ला किया—'क्या है? क्या है?' इतनेमें चोर भाग गया। बहूकी इस बुद्धिमत्तापर सब बड़े प्रसन्न हुए।

जब कुम्भका पर्व आया, तब वे सब हरकी पैड़ीपर स्नान करनेके लिये चले। अत्यधिक भीड़ होनेके कारण कई यात्री रास्तेमें दबकर

मर गये, किंतु बुद्धिमती सुशीला घरवालोंको बड़ी चतुराईके साथ भीड़से निकालती हुई सड़कके किनारे-किनारे चलकर घाटपर ले गयी। गंगा-स्नान करके सब लोग डेरेपर वापस आ गये। फिर एक-दो दिन बाद ही वे सब लोग प्रयाग लौट आये और अपने घरपर पहलेकी भाँति रहने लगे।

(३)

एक बार ग्रीष्मकालकी पूर्णिमाका दिन था। सुशीला अपने घरकी छतपर घूम रही थी। पड़ोसके घरकी मालकिन भी अपने घरकी छतपर आयी हुई थी। वह सम्पन्न घरकी विधवा ब्राह्मणी थी। उसके दो लड़के थे। एक १६ वर्षका और दूसरा ३ वर्षका। दोनों घरोंकी छतें बराबर होनेके कारण सुशीलाने सामने जाकर उसे नमस्कार किया। वह बड़ी ही कर्कशा थी। वह बोली—'क्यों री! तू चार अक्षर पढ़ी है, इसीके घमंडमें मुझे चिढ़ा रही है।' सुशीला बोली—'नहीं जी, मैं तो आपको अपनी माता और सासके समान समझकर नमस्कार करती हूँ।' वह बोली—'ठीक, तब तो तू मुझे चतुराईसे अपने बाप और ससुरकी औरत बनाना चाहती है? तेरे उन निपूते बाप और ससुरकी दाढ़ी जलाऊँ, जो मुझे अपनी औरत बनाना चाहते हैं।' वह इस प्रकार गालियाँ देने लगी और फिर नीचे उतरकर घरके बाहर निकलकर सड़कपर शोर मचाने लगी। जब राह चलते और अड़ोस-पड़ोसके बहुत लोग इकट्ठे हो गये, तब वह उनसे कहने लगी—'इस छोकरी सुशीलाकी ढिठाई तो देखो, यह मुझे अपने बाप और ससुरकी औरत बनाती है।'

जो लोग सुशीलाके हितैषी थे, वे उसकी नाना प्रकारकी गालियोंको सुनकर सुशीलाके पास गये और कहने लगे कि 'तुम अपने पतिको कहकर इसकी पुलिसमें रिपोर्ट करवा दो। अदालत

इससे मुचलका ले लेगी। कोई भी किसीको अनुचित गालियाँ नहीं दे सकता।' इसपर सुशीलाने बड़े विनयके साथ हाथ जोड़कर प्रेमसे उन लोगोंको समझाया—'पुलिसमें जाना भले आदमियोंका काम नहीं है। आप देखिये, भगवान्‌ने चाहा तो थोड़े ही समयमें मैं इन्हें प्रेमसे अपना लेती हूँ।' उसके इस सरल द्रोहरहित[२५] हितैषितापूर्ण निर्वैरताके व्यवहारको देखकर वे सब बड़े प्रसन्न होकर चले गये।

एक दिनकी बात है कि उस कर्कशाका तीन सालका बच्चा घरके बाहर सड़कपर खेल रहा था, उसी समय दो साँड़ लड़ते-लड़ते बालकके समीप आ पहुँचे। सुशीलाने यह देख लिया। वह तुरंत दौड़कर उसे अपनी गोदमें उठा लायी और पड़ोसिनके पास जाकर कहा—'अकेले बालकको सड़कपर नहीं छोड़ना चाहिये। दो साँड़ लड़ते आ रहे थे। लड़केको चोट न पहुँचा दें, इसलिये मैं इसे उठा लायी हूँ।' इसपर कर्कशा बोली—'चल री चल! इसे तू क्यों उठा लायी? मैं आप ही ले आती।' सुशीलाने कहा—'मैं ले आयी तो इसमें मेरा क्या बिगड़ गया?' यों कहकर लड़केको उसके पास बिठाकर वह अपने घर लौट आयी।

सुशीलाके नैहरमें एक धनी ब्राह्मण था, उसकी सुशीलापर बड़ी श्रद्धा थी। उसने अपनी बारह वर्षकी कन्याकी सगाईके लिये सुशीलाके पास आदमी भेजा। उस कन्याकी सगाईकी बातचीत इसी कर्कशाके बड़े लड़केके साथ चल रही थी। शहरके एक आदमीने कर्कशासे कहा—'तुम्हारे लड़केकी सगाईके विषयमें पूछताछ करनेके लिये सुशीलाके नैहरका ब्राह्मण उसके पास आया है।' यह सुनकर कर्कशा चौंक उठी और बोली—'वह तो मुझसे लड़ी हुई है और सदा मुझसे दुश्मनी रखती है।' यह कहकर वह सुशीलाके घरके द्वारपर छिपकर खड़ी हो गयी और सुशीला तथा उस ब्राह्मणकी परस्परकी बातचीत

गुप्तरूपसे सुनने लगी।

ब्राह्मणने सुशीलासे कहा—'तुम्हारे भाईके मित्रने तुमपर विश्वास करके मुझे यहाँ भेजा है। तुम्हारे पड़ोसमें विधवा ब्राह्मणीके एक सोलह वर्षका लड़का है, उसके साथ उनकी कन्याकी सगाई करनेमें तुम्हारी क्या राय है?' सुशीला सब हाल जानती थी। उसने सोचा, दोनों ही धनी हैं। दोनोंकी ही स्त्रियाँ कर्कशा और कलहप्रिय हैं। यह सोचकर उसने ब्राह्मणसे कहा—'उनके लिये यह सगाई सब प्रकारसे अच्छी है।' ब्राह्मणने पूछा—'लड़केकी माँको तो लोग कर्कशा बतलाते हैं।' सुशीला बोली—'आजकलके समयमें स्त्रियोंमें बुद्धि कम होनेके कारण सभी घरोंमें राग-द्वेष और कलह रहता है। इसीसे एक-दूसरेकी निन्दा करनेका स्वभाव पड़ा हुआ है। मेरी समझमें तो उनके लिये यह सगाई कर लेनी अच्छी है।' यह संदेश लेकर ब्राह्मण वहाँसे चला गया।

कर्कशा सारी बात आद्योपान्त सुन रही थी। उसपर सुशीलाके इस बर्तावका बहुत ही अच्छा प्रभाव[२१] पड़ा। वह घरके भीतर सुशीलाके पास चली गयी और विनयसे कहने लगी—'सुशीला! तू धन्य है। मैंने तो तेरे साथ बुरा-ही-बुरा बर्ताव किया। इसपर भी तू तो मेरा हित ही करती रहती है। बहिन! मैं तेरे इस व्यवहारको देखकर मुग्ध हो गयी। यह विद्या तूने कहाँसे सीखी है? क्या मेरा स्वभाव भी तुझ-जैसा हो सकता है? मैं तेरा संग करना चाहती हूँ। क्या मैं समय-समयपर तेरे यहाँ आ सकती हूँ?' सुशीलाने उत्तर दिया—'क्यों नहीं। यह तो आपका ही घर है। आप यहाँ पधारें, यह तो मेरे लिये बड़े ही सौभाग्यकी बात है। आपकी मुझपर बड़ी ही दया और प्रेम है।' वह बड़ी प्रसन्न हुई और समय-समयपर सुशीलाके घर जाने लगी। सुशीलाके संगसे उसपर भी अच्छा असर

होने लगा तथा थोड़े ही समय बाद वह भी सुशीलाके समान सुन्दर स्वभाववाली बन गयी।

कर्कशा पड़ोसिनमें ऐसा अद्भुत परिवर्तन देखकर सुशीलाके उन हितैषियोंपर भी बड़ा अच्छा असर पड़ा, जो पहले उसकी रिपोर्ट पुलिसमें करनेके लिये सुशीलासे अनुरोध करते थे, वे अब सुशीलाके पास आकर कहने लगे—'सुशीला! बड़े आश्चर्यकी बात है, तुमने तो इसे अपने समान ही बना लिया।' सुशीला बोली—'यह सब ईश्वरकी कृपा है।' उन हितैषियोंने फिर कहा— 'धन्य है तुमको। हम जो इस कर्कशाकी पुलिसमें रिपोर्ट करनेको कहते थे, वह हमारी गलती थी।'

कुछ ही दिनों बाद कर्कशाके लड़केका विवाह निश्चित हुआ, तब वह सुशीलाके घरके सभी पुरुषोंको आग्रह करके विवाहमें ले गयी। घरके सभी पुरुष तीन दिनोंके लिये बारातमें चले गये। इसी बीचमें उस मुहल्लेमें एक बनियेके यहाँ चोरी हो गयी। अतः उस बनियेको साथ लेकर कोतवाल पण्डितजीके घरमें आ घुसे और बोले कि हम आपके घरकी तलाशी लेने आये हैं। यह सुनकर घरकी सब स्त्रियाँ घबरा गयीं, तब गौतमी बोली—'बहू! पुलिसवाले आये हैं, इनका आना अच्छा नहीं। इन लोगोंको कुछ रुपये-पैसे देकर विदा कर दो।' सुशीलाने कहा—'आप चिन्ता न करें, मैं स्वयं ही सब ठीक कर लूँगी।' फिर सुशीला उस बनियेसे कहने लगी—'क्यों जी! क्या आप हमारे घरमें पुरुषोंकी अनुपस्थितिमें तलाशी करवाकर हमारी बेइज्जती कराना चाहते हैं? क्या आपको अपने चोरीके मालका हमारे घरपर संदेह है?' बनियेने कहा—'नहीं देवीजी! मैं तो ऐसा नहीं चाहता। मुझे तो ये पुलिसवाले ही यहाँ ले आये हैं।' फिर सुशीलाने निर्भीकतापूर्वक कोतवालसे कहा—'क्यों कोतवालजी! क्या आप हमारे घरकी तलाशी

लेने आये हैं?' कोतवाल बोला—'कल रातको इस बनियेके यहाँ चोरी हो गयी, अतः हमलोग तलाशी लेनेके लिये यहाँ आये हैं।' सुशीलाने निर्भयतासे[1] कहा—'बहुत अच्छा। आप मुझे लिखकर दे दीजिये कि मैं अपनी स्वतन्त्रतासे तुम्हारे घरकी तलाशी ले रहा हूँ और यह भी बताइये कि तलाशी लेनेपर कुछ नहीं पाया जायगा तो हमारी इस बेइज्जतीका दावा हम किसपर करें, उसके जिम्मेदार कौन होंगे?' यह सुनकर कोतवाल घबराया और बोला—'यह बनिया ही मुझे यहाँ ले आया है और यहाँ आकर अस्वीकार करता है।' यों बात बनाकर वे सब वहाँसे चल दिये। जब घरके पुरुष विवाहसे लौटे तो इस घटनाको सुनकर बड़े प्रसन्न हुए तथा सुशीलाका और भी अधिक आदर-सत्कार करने लगे।

(४)

इस प्रकार घरके पुरुषोंके द्वारा सुशीलाका बड़ा आदर-सत्कार होने लगा। सुशीलाके इस बढ़ते हुए आदर-सम्मानने घरकी अन्य स्त्रियोंके मनोंमें ईर्ष्याकी आग जला दी। वे सब उससे मन-ही-मन कुढ़ने लगीं और उसे नीचा दिखानेके लिये उसमें छिद्रान्वेषण करने लगीं; किंतु सुशीलामें तो कोई दोष था ही नहीं, वह तो सबकी सेवा करती और सबके गुणोंका बखान किया करती, किसीके अवगुणोंकी ओर तो वह कभी देखती ही नहीं। इसलिये उन लोगोंको कोई साधन नहीं सूझता था। घरकी स्त्रियोंकी इस मनोवृत्तिको देखकर रसोइया और नौकरने इस परिस्थितिसे लाभ उठानेकी सोची।

एक दिन घरकी सब स्त्रियोंने रसोइया और नौकरके साथ मिलकर सुशीलाको गिरानेके लिये षड्यन्त्र रचा। एक योजना बनायी गयी और उसीके अनुसार देवी रामदेवीने यह झूठी बात फैलायी कि मेरा स्वर्णका कंकण चोरी हो गया और मेरा यह संदेह सुशीलापर है।

घरके पुरुषोंको इस बातपर विश्वास नहीं हुआ। कुछ ही दिन बीतनेपर बहिन रोहिणीने यह झूठा प्रचार किया कि मेरा लहँगा और एक साड़ी कलसे गायब है। तब पुरुषोंको कुछ आश्चर्य हुआ कि रोज-रोज घरमें यह चोरी कैसे होने लगी। जाँच-पड़ताल की गयी, पर कुछ पता नहीं चला। फिर दो-चार दिनों बाद ही भगवानदेवीने कहा कि मेरा सोनेका हार कल रातसे गायब है। घरवालोंने बहुत छानबीन की, किंतु कुछ भी पता नहीं चला। चलता भी कैसे, जिसकी चीज होती, वही उसे छिपाकर रख देती। घरकी सभी स्त्रियोंने अपनी-अपनी चीजोंका सुशीलापर ही संदेह बतलाया।

वहाँ उसी मुहल्लेमें भक्तिदेवी नामकी एक बुढ़िया रहती थी, जिसका नैहर सुशीलाके पिताके पड़ोसमें ही था और सुशीलाकी माँके साथ उसका बड़ा प्रेम था।

नौकरसे यह सूचना मिली कि भक्तिदेवी कल अपने नैहर जानेवाली है। इसपर नौकर, रसोइया और सब स्त्रियोंने मिलकर एक जालसाजी रची। जिन चार चीजोंके खोनेकी बात फैलायी गयी थी, वे चारों चीजें रोहिणीने एक थैलीमें रखकर उसे सीकर उस बुढ़िया भक्तिदेवीके पास रसोइयाके हाथ भेजी और साथमें एक चिट्ठी लिखकर दी; जिसमें यह लिखा कि 'माताजीसे सुशीलाका नमस्कार। इस भक्तिदेवीके हाथ यह थैली भेजी जा रही है। इसका किसीको पता नहीं लगना चाहिये।' रसोइयाने भक्तिदेवीके पास जाकर कहा—'लो, सुशीलाने अपनी माँके पास यह थैली भेजी है और कहा है कि मेरी माँको ही देना, किसी दूसरेको नहीं।' यह कहकर रसोइया घर आ गया।

उसी रात्रिमें रोहिणीने सुशीलाको छोड़कर घरकी उन स्त्रियों और पुरुषोंको एकत्र करके यह बात कही कि कई दिनोंसे जो अपने घरकी चीजें चोरी हो रही हैं, उनके लिये हमलोगोंका सुशीलापर

ही संदेह है। अपने मुहल्लेमें रहनेवाली बुढ़िया भक्तिदेवी सुशीलाकी माँसे विशेष प्रेम रखती है। कल वह अपने नैहर जानेवाली है। उसके साथ सुशीलाने अपनी माँके पास शायद कुछ भेजा है। कल ही प्रातःकाल भक्तिदेवी जायगी और अपने घरके आगे होकर रास्ता है ही। तब उसे रोककर पूछना चाहिये और सब चीजें देखनी चाहिये कि सुशीलाने क्या-क्या चीजें भेजी हैं।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही सुशीलाका पति मोहनलाल अपने घरके द्वारपर बैठ गया और भक्तिदेवीकी प्रतीक्षा करता रहा। जब भक्तिदेवी थैली लिये जा रही थी, तब मोहनलालने उसे रोका और कहा— 'बुढ़िया माई! क्या लिये जा रही हो?' भक्तिदेवीने कहा—'सुशीलाने अपनी माँके पास एक चिट्ठी और एक थैली भेजी है।' मोहनलाल बोला—'उसे नहीं भेजना है, वापस दे दो।' यह कहकर उसने बुढ़ियासे वह थैली और चिट्ठी ले ली और कहा— 'अब तुम जाओ।'

इसके बाद मोहनलालने जहाँ घरके सब पुरुष थे, वहाँ वह थैली और चिट्ठी ले जाकर रख दी और बुढ़ियाने जो बात कही वह सब भी कह दी। थैलीको खोलकर देखा गया तो जो चार चीजें चोरी हो गयी थीं, वे उसके अंदर मिलीं। फिर जब चिट्ठी खोलकर पढ़ी गयी, तब सब आग-बबूले हो गये। मोहनलाल क्रोधमें भरकर घरमें गया और सुशीलाको बड़े बुरे शब्दोंमें डाँटने लगा— 'बदमाश, चली जा हमारे घरसे बाहर। तूने ही घरकी सब चीजें चुरायी हैं, तूने जो थैली और चिट्ठी भक्तिदेवीके हाथ अपनी माँके पास भेजनेका प्रबन्ध किया था, वह सब पकड़ी गयी। हम किसी हालतमें तुझ-जैसी चोट्टीको घरमें रखना नहीं चाहते। जहाँ तेरी इच्छा हो वहीं चली जा।' सर्वथा मिथ्या और अप्रत्याशित आरोपको सुनकर सुशीला काँप उठी, उसकी आँखोंसे आँसू बहने लगे; उसने बड़े ही करुण

शब्दोंमें कहा—'स्वामिन्! आप विश्वास करें, मैंने यह काम नहीं किया है। भगवान् साक्षी हैं। आप शान्त होकर सारी बातें सोचिये। जरा उस बुढ़ियासे तो पूछिये कि उसे थैली और चिट्ठी कौन दे गया था। न मैंने कोई चिट्ठी लिखी और न मैंने कोई थैली ही भक्तिदेवीको दी है। आप उस चिट्ठीके अक्षरोंको तो देखिये कि वे किसके हैं। आपको इसकी पूरी-पूरी जाँच-पड़ताल करनी चाहिये।' पर मोहनलाल तो इस समय क्रोधान्ध था। मेरी पत्नी ऐसा कुकार्य करती है, इसीसे उसके मनमें बड़ा क्षोभ था। क्रोधमें विवेक नष्ट हो ही जाता है। जाँच-पड़ताल कौन करे—प्रमाण सामने है। उसने झुँझलाकर कहा—'तुझे सफाई देते शर्म नहीं आती। तूने तो मुझपर अमिट कलंक लगा दिया। मेरे मुखपर वह कालिख पोत दी, जो कभी धुल नहीं सकती। मैं तेरा मुँह नहीं देखना चाहता। जा, तुरंत निकल जा यहाँसे।' सुशीलाने गिड़गिड़ाकर बहुत कुछ कहा, पर उसने एक भी नहीं सुनी और उसे घरके बाहर निकाल दिया। इन्द्रसेन उस समय चार वर्षका था और इन्द्रसेनी छः वर्षकी, उन्हें दादीने अपने पास रख लिया। षड्यन्त्रकारी रसोइया, नौकर और घरकी स्त्रियोंको अपनी सफलतापर बड़ा आनन्द था। वे हँस रहे थे और उछल-उछलकर कह रहे थे—'हम तो पहले ही जानते थे कि यह इतनी बड़ी-बड़ी बातें बनानेवाली निश्चय ही नीच है, पर इसने तो सबपर जादू ही डाल दिया था, आज सारी पोल खुल गयी।'

ऐसा अनुचित व्यवहार देखकर भी सुशीलाके हृदयमें कोई क्रोध[१२] नहीं आया और न कोई प्रतिहिंसाका[१०] भाव ही उत्पन्न हुआ। वह किसीपर भी दोष न लगाकर अपने प्रारब्धको कोसने लगी। उसने सोचा,'जब मुझ निरपराधिनके ऊपर कलंक लगाकर मेरे पतिदेव ही मुझे त्याग रहे हैं, तब ऐसी हालतमें मेरे जीनेसे ही क्या प्रयोजन

है?' किंतु शास्त्रोंने बतलाया है कि स्त्रीके लिये पति ही तीर्थ, पति ही व्रत और पति ही सब कुछ है, ऐसा समझकर मुझे उनके विधानमें ही संतुष्ट रहना चाहिये और हर समय धैर्य रखना चाहिये। विपत्ति तो सभी मनुष्योंपर आया ही करती है। समझदार मनुष्यको अपने धीरज और धर्मका कभी किसी भी हालतमें त्याग नहीं करना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥

(२। ५६)

'दुःखोंकी प्राप्ति होनेपर जिसके मनमें उद्वेग नहीं होता, सुखोंकी प्राप्तिमें जो सर्वथा निःस्पृह है तथा जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं, ऐसा मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है।'

श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी॥

अतः दुःखके समय आवेशमें आकर जीवनका विनाश करना कोई बुद्धिमानी नहीं है। उससे न इस लोकमें और न परलोकमें ही सुख हो सकता है। प्रत्युत इस समय जो मुझे घरसे निकाले जानेका दुःख है, आत्महत्या करनेके समय तो इससे भी अधिक दुःख होगा। जो मनुष्य मरनेके लिये नदीमें प्रवेश करता है, उसे उस समय इतना अधिक दुःख होता है कि वह फिर जीनेके लिये बाहर निकलनेका प्रयत्न करता है। इसी प्रकार मरनेके लिये विष खानेवाला भी पुनः जीनेके लिये विष उतारनेका प्रयास करता है और शरीरपर मिट्टीका तेल छिड़ककर मरनेवाला व्यक्ति तो चिल्ला-चिल्लाकर सिसक-सिसककर मरता है। उसे केवल इस लोकमें ही दुःख होता हो—इतना ही नहीं, मरनेके बाद वह अन्धकारमय नरकोंमें

जाकर उससे भी घोर कष्ट और दुर्गतिको प्राप्त होता है।

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः।
ताँ्स्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

(ईशावास्य० ३)

'अज्ञान और दुःख-क्लेशरूप महान् अन्धकारसे आवृत जो असुरोंकी प्रसिद्ध नाना प्रकारकी योनियाँ और नरकरूप लोक हैं, आत्माकी हत्या करनेवाले जो कोई भी मनुष्य हों, वे मरकर उन्हीं लोकोंमें बारंबार जाते हैं।'

यही नहीं, उसके नैहर और ससुराल दोनों कुलोंको सदाके लिये घोर कलंक लग जाता है। यह मेरे लिये बहुत ही लज्जाकी[१९] बात है। उत्तम स्त्रियोंके लिये तो आत्महत्याका संकल्प होना ही कलंक है। अतः मैं अपने जीवनको कभी नष्ट नहीं करूँगी। ईश्वरके घरपर न्याय है और मैं सच्ची हूँ। मैं जीती रहूँगी तो एक दिन ऐसा आवेगा कि मेरा यह सब कलंक अपने-आप दूर हो जायगा। झूठी बात कहाँतक टिकेगी? मेरी तो बात ही क्या है, भगवान् श्रीकृष्णपर भी मणिकी चोरीका झूठा कलंक लग गया था, किंतु वह कायम नहीं रहा। ऐसा विचारकर उसने अपने हृदयमें धीरज[२३] धारण किया और वह स्वतः प्राप्त हुए कष्टको सहन करके स्वधर्मपालनरूप तपस्यामें[८] संलग्न हो गयी एवं अपने शरीरनिर्वाहका न्याययुक्त उपाय सोचने लगी।

(५)

सायंकाल होनेपर वह एक धर्मशालामें जाकर ठहर गयी। वह नित्य-निरन्तर नियमपूर्वक परमात्माका ध्यान[३] करती, जिसके प्रभावसे उसका अन्तःकरण[२] पवित्र होता गया। वह मन-इन्द्रियोंका[५] संयम करके नित्य गीता-रामायणका स्वाध्याय[७] और भगवान्‌के पवित्र नामोंका जप किया

करती तथा बिना किसी द्रोह-द्वेषके वह मन-ही-मन अपने पतिदेवके विचार शुद्ध हो, इसके लिये कातर प्रार्थना करती।

उसकी जेबमें घरकी रोकड़के हिसाबके पाँच रुपये थे, उन्हींसे उसने अपने भावी जीवनका कार्यक्रम सोचा। दूसरे दिन वह चार आनेमें सूआ, पौने दो रुपयेमें रंगीन सूत, आठ आनेमें अपने लिये आटा-दाल और मसाला, चार पैसेमें दोने-पत्तल तथा दो रुपये सात आनेमें एक बाल्टी और तसला खरीदकर ले आयी। उसने तसलेमें आटा गोदा और उसे पत्तलपर रख दिया। फिर तसलेको उलटकर उसीपर रोटी सेंक ली। रोटी पत्तलपर रखकर तसलेको धोकर उसीमें दाल पका ली। इसी प्रकार अपना भोजन तैयार कर लिया। भोजन करनेके बाद दिनमें उसने सूतके गंजी और मोजे बना लिये; जिन्हें बाजारमें बेचकर साढ़े तीन रुपये कर लिये। रोज इसी प्रकार वह पौने दो रुपये कमाने लगी, जिसमें बारह आनेमें दोनों समयके भोजनका सामान ले आती और एक रुपया जमा रख लेती। पंद्रह दिनोंमें पंद्रह रुपये हो जानेपर उसने पाँच रुपये मासिक किरायेमें एक घर ले लिया, पाँच रुपयेके रसोईके बरतन और खरीद लायी तथा पाँच रुपयेका सूत ले आयी।

इसके बाद सुशीलाने शहरमें सूचना कर दी कि साड़ी, लहँगा, ओढ़ना, चद्दर, दुपट्टा आदिपर किसीको बेल-बूटे कढ़ाने, दोहे, चौपाई, श्लोक आदि लिखवाने हों तो मेरे घर भेज दें। लोग उसके पास भेजने लगे। उसके लिखे हुए बड़े ही सुन्दर और आकर्षक दोहे, चौपाई, श्लोक और बेल-बूटे आदिको देखकर लोग उसकी शिक्षा और कारीगरीपर मुग्ध होने लगे। सुशीलाके इस कार्यसे डेढ़ सौ, दो सौ रुपये महीनेकी आय होने लगी। सालभरके बाद उसने एक बड़ा मकान किरायेपर लेकर उसमें एक कन्यापाठशाला खोल दी,

जिसमें बहुत-सी लड़कियोंको बिना शुल्कके ही वह व्याकरण, गीता, रामायण आदि हिन्दी-संस्कृतके ग्रन्थ पढ़ाने लगी। वह उन्हें विद्याके साथ कारीगरीका काम भी सिखाती थी। लड़कियाँ उसके पास जो चीजें तैयार करतीं उन्हें वह बाजारमें बिक्री कर दिया करती, जिससे प्रतिमास उसे दो सौ रुपयोंकी बचत होने लगी। इस प्रकार सालभरमें उसका सब खर्च लगकर उसके पास दो हजार रुपयोंकी बचत हो गयी।

उसके बाद उसने थोड़ी जमीन खरीदकर एक कच्चा घर बना लिया और एक गाय खरीद ली तथा एक नौकर भी रख लिया, जो गायका तथा घरका सब काम-काज कर देता। इस प्रकार करते-करते दूसरे वर्ष उसके पास पाँच हजार रुपये बच गये।

तीसरे वर्ष वह निजका रेशम, सूत और कपड़ा खरीदकर उनपर गीता-रामायणके श्लोक, दोहे, चौपाई और सुन्दर-सुन्दर बेल-बूटे बनाकर सत्यता[११] और न्यायपूर्वक क्रय-विक्रय भी करने लगी तथा दूसरे लोग जो अपने कपड़ोंपर बेल-बूटे, दोहा-चौपाई लिखवाने आते उनका काम भी करने लगी। उसके सत्य, न्याय, विनय और प्रेमयुक्त व्यवहारका जनतापर बहुत अच्छा असर पड़ने लगा। इस प्रकार व्यापार करते-करते उसके पास पंद्रह हजार रुपये हो गये एवं उसके सब तरहका खर्च लगकर प्रतिमास करीब एक हजार रुपये बचने लगे। इस तरह रुपये बढ़ जानेसे शहरमें उसकी बहुत ही ख्याति हो गयी। फिर वह एक धनी व्यक्तिकी तरह बहुत ही इज्जतके साथ रहने लगी। उसने अपनी जमीनपर एक पक्का मकान भी बना लिया तथा कई आदमी रख लिये और उसका व्यापार खूब चलने लगा। उसके चरित और गुण तो सर्वथा शुद्ध, सात्त्विक और आदरणीय थे ही, उसके कार्य-व्यवहारसे भी ख्याति फैल गयी। उसके हृदयमें दीन,

दु:खी, अनाथ, गरीब, अपाहिज लोगोंके प्रति बड़ी ही दया[१६] थी, इस कारण वह उन्हें आवश्यकतानुसार अन्न-वस्त्र आदिका निष्कामभावसे दान[४] करने लगी, वह नित्य रसोई बनाकर भगवान्‌के भोग लगानेके बाद बिना मन्त्रोंके बलिवैश्वदेव[६] करती और फिर पहले अतिथियोंको भोजन कराकर स्वयं भोजन करती।

(६)

इधर साध्वी सुशीलाको घरसे निकाल देनेके कारण शहरमें उसके सास-ससुर और जेठ-जेठानी आदि सभी लोगोंकी निन्दा होने लगी तथा घरमें आपसी अनबन और विवेककी कमीके कारण धीरे-धीरे घरकी सम्पत्ति नष्ट होने लगी।

एक दिनकी बात है कि बहिन रोहिणीके पास उसी मुहल्लेकी एक स्त्री आयी और बोली कि आज मुझे पचास रुपयोंकी बहुत ही आवश्यकता है। यदि तुम रुपये दे सको तो मैं तुम्हें उनका दो रुपये प्रतिशत ब्याज दे दूँगी। उसे भले घरकी स्त्री समझकर रोहिणीने पचास रुपये दे दिये। वह रुपये लेकर घर चली गयी। कुछ देर बाद ही वह वापस आयी और एक रुपया देकर कहने लगी—'आपने पचास रुपयोंकी जगह इक्यावन रुपये गिन दिये हैं, इसलिये मैं वापस आयी हूँ। अपना एक रुपया ले लें।' इसका रोहिणीपर अच्छा असर पड़ा। उसने रुपया ले लिया और सोचा—यह बड़े घरानेकी अच्छी स्त्री है। पंद्रह दिन ही बीते थे कि उसने वे पचास रुपये और उनका एक महीनेका ब्याज एक रुपया रोहिणीको दे दिया। तब रोहिणीने कहा—'आप ये रुपये कुछ दिन और रख सकती हैं।' वह बोली—'मुझे जरूरत होगी तब ले लूँगी, अभी जरूरत नहीं है।' ऐसा कहकर वह चली गयी।

कुछ दिनोंके बाद वह फिर आयी और बोली—'आज मुझे दो

सौ रुपयोंकी आवश्यकता है, उधार दे सकती हैं क्या!' रोहिणीने झट रुपये निकालकर दे दिये। दस दिन बाद ही उस स्त्रीने दो सौ रुपये और उनके एक महीनेके ब्याजके चार रुपये—इस प्रकार दो सौ चार रुपये लौटा दिये। जिससे रोहिणीके दिलमें और भी विश्वास जम गया।

कुछ दिनोंके पश्चात् वह फिर एक दिन आयी और रोने लगी। रोहिणीके पूछनेपर उसने कहा—'हमारे कुटुम्बमें विवाह है। क्या करूँ? मेरा सारा गहना हमारे घरवालोंने बन्धक रख छोड़ा है और बिना गहने विवाहमें जानेसे बेइज्जती होती है, अतः आप तीन दिनको विवाहमें पहननेके लिये कृपापूर्वक मुझे अपना गहना दे दें तो हमारी इज्जतकी रक्षा हो जाय।' रोहिणीको उसपर विश्वास था ही, उसने अपना सब गहना निकालकर उसे दे दिया। वह स्त्री गहना लेकर अपने घर चली गयी। किंतु जब वह पाँच दिनोंतक लौटकर नहीं आयी तो रोहिणी उसके घरपर गयी और उससे पूछा—'बहिन! तुम्हारे विवाहका काम हो गया क्या?' उस स्त्रीने कहा—'हमारे यहाँ तो किसीका विवाह था ही नहीं।' रोहिणी बोली—'आपके कुटुम्बमें विवाह था, उसके लिये आप मेरे पास गहना लेने गयी थीं न!' उसने उत्तर दिया—'हमारे न तो कोई विवाह था, न कोई गहनेकी आवश्यकता ही थी। हमारे अपने पास ही बहुतेरे गहने हैं, हम तुम्हारे पास गहनेके लिये क्यों जाती!' रोहिणी बोली—'आप मेरे पास कई बार आयीं, रुपये-पैसोंका भी आपसमें कई बार लेन-देन हुआ, फिर आज आप इस तरह मेरे सामने झूठी बातें बोल रही हैं!' उसने कहा—'वाह-वाह! झूठी बातें मैं बोल रही हूँ कि तू, हम तो स्वयं रुपयोंका ब्याज उपजाते हैं, हमारे तो रुपये-की कोई कमी नहीं है, मैं क्यों जाती तुम्हारे पास रुपया लाने?

हमारे यहाँ तो रुपये-पैसोंका काम पड़ता है तो पुरुष ही काम किया करते हैं। हमारे घरके पुरुष यदि ये बातें सुन लेंगे तो तुम्हारी बेइज्जती करेंगे।'

उसकी बातें सुनकर रोहिणीको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह अपने घर लौट आयी और दुःखित हृदयसे अपने पिता और भाइयोंके सामने रोने लगी। उसकी बातें सुनकर उसके पिता और भाईने पूछा—'उस स्त्रीको तुमने जो गहना दिया है उसकी कोई लिखा-पढ़ी है क्या? और उस समय कौन हाजिर था?' रोहिणी बोली—'मैंने तो उसके विश्वासपर गहना दे दिया, कोई लिखा-पढ़ी नहीं की और न उस समय वहाँ कोई दूसरा था ही।' पिता और भाइयोंने कहा—'जब उसकी कोई लिखा-पढ़ी और गवाही नहीं, तब इसका कोई उपाय नहीं। ऐसा काम तुम्हें हमसे बिना पूछे नहीं करना चाहिये था।' सब लोग सिर पीटकर रह गये।

एक दिनकी बात है, पण्डित देवदत्तजीके पास एक साधुवेषधारी ठग आया। पण्डितजीने उसकी बहुत सेवा-शुश्रूषा की। साधुने पण्डितजीसे पूछा—'योगक्षेम ठीक चलता है न?' पण्डितजी बोले—'जबसे छोटी बहू घरसे चली गयी, तबसे घरमें कलह-क्लेश रहते हैं। संसारमें हमारी निन्दा होनेसे जीविका भी प्रायः नष्ट हो गयी और सट्टे-फाटकेमें घाटा लग जानेके कारण लड़कोंका व्यापार भी बंद हो गया तथा मोहनलालके व्यापारका कोई संयोग लगा नहीं।' साधुने कहा—'मैं तुम्हें एक रसायन विद्या बतला देता हूँ जिससे तुम प्रतिदिन दो माशा सोना बना लिया करो, पर अधिक लोभ नहीं करना; साधुवेषधारीने फिर कहा—'अच्छा! तुम बाजारसे चार आनेका संखिया, चार आनेका गन्धक, चार आनेका पारा, एक कुठाली और कुछ कोयला ले आओ।' वे तुरंत ले आये। उस ठगने अपनी झोलीसे

चौलाईके पत्ते निकालकर उसके रससे संखिया, गन्धक और पाराके पुट देकर उसे पण्डितजीके हाथसे कुठालीमें डलवा दिया तथा कोयलोंसे कुठालीको भरकर गोइठोंसे आग जला दी, जिससे कोयले जलने लगे। ज्यों-ज्यों कोयले जलते गये, त्यों-त्यों पण्डितजी उसमें और कोयला डालते गये। जो कोयले डाले जा रहे थे, उनमेंसे उस ठगने पण्डितजीकी दृष्टिको बचाकर एक कोयलेके अंदर छेदकर उसमें दो माशा सोना पहलेसे ही भर दिया था। कोयला गिराते-गिराते जब स्वर्णवाला कोयला कुठालीमें पड़ गया, तब उसने और कोयला डालना बंद करवा दिया। संखिया, गन्धक और पारा तो उड़ गया और कोयले जल गये, केवल दो माशा सोना था, वह कुठालीमें रह गया।

स्वर्णको देखकर पण्डितजीकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहा। साधुवेषधारी ठग चला गया। उसके जानेके बाद पण्डितजीने संखिया, पारा और गन्धक आदिका काफी स्टाक कर लिया तथा प्रतिदिन साधु-रूपधारी असाधुके कहे अनुसार करने लगे, पर बनता-बनाता कुछ नहीं। एक दिन उसीको घरके सामने देखकर पण्डितजी उसके चरणोंमें गिर गये और उसे घरपर लाकर बड़ी सेवा की। साधुवेषधारीने पूछा—'योगक्षेम ठीक चलता है न?' पण्डितजीने कहा—'नहीं! आपने तो मुझसे कोई छिपाव नहीं किया, परंतु मेरे भाग्यकी बात है कि प्रतिदिन संखिया, पारा और गन्धक फूँकता हूँ पर होता कुछ नहीं।' साधुवेषधारी बोले—'अच्छा, आज हमारे सामने तुम अपने-आप सब विधि करो; कोई गड़बड़ होगी तो हम तुम्हें बतला देंगे!' जब पण्डितजी भीतरसे सब सामान लाने गये तो बाबाजीने एक कोयलेके अंदर छेदकर दो माशा स्वर्ण उसमें रख दिया। सामग्री तो सब पण्डितजीके पास थी ही, शीघ्र ही लेकर आ गये तथा गन्धक, पारा और संखियाको चौलाईकी रसकी भावना देकर कुठालीमें डाला और कुछ कोयला

डाल दिया। ज्यों-ज्यों कोयला जलता जाता, त्यों-त्यों पण्डितजी चिमटेसे और कोयलोंको उठा-उठाकर कुठालीमें डालते जाते। वह ठग अलग दूर बैठा देख रहा था। उसने जब देखा कि स्वर्णवाला कोयला भी कुठालीमें शामिल हो गया है तो उसने कहा—'पूरा एक घंटा हो गया है, अब सोना बन जाना चाहिये। तुम उठकर देखो, अब और कोयला मत डालो।' थोड़ी देरमें कोयले सब जल गये। संखिया, पारा, गन्धक सब उड़ गया। केवल दो माशा सोना कुठालीमें रह गया। पण्डितजी सोनेको देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'महाराज! अब तो मैं बिलकुल समझ गया।' तब वह ठग वहाँसे चला गया।

पण्डितजी प्रतिदिन संखिया, पारा और गन्धक फूँकते रहे, पर बनता-बनाता कुछ नहीं। फिर पाँच-सात दिन बाद वही साधु दरवाजेके आगे सड़कपर आता दिखलायी दिया। पण्डितजी दौड़कर उसके चरणोंमें गिर गये। उसने पूछा—'अब तो गृहस्थीका काम ठीक चलता है न?' पण्डितजीने कहा—'कुछ नहीं। आपने तो सब बातें बतला दीं, हमारे हाथसे भी कराकर दिखा दिया, परंतु होता कुछ नहीं! न मालूम क्या बात है? आपके सम्मुख तो आपके प्रभावसे हो जाता है, आप नहीं रहते तब नहीं होता।' वह बोला—'हम प्रतिदिन तो आ नहीं सकते। लो, हम एक साथ ही तुम्हारे लिये इतना सोना बना देते हैं कि तुम्हारे जन्मभर काम आवे। तुम्हारे घरमें जितना सोना है, सब ले आओ। सब सोना एक हँडियामें डालकर आगपर चढ़ा दो तथा उस हँडियाको जलसे भर दो और तुम्हारे पास जितना कुछ गन्धक, पारा, संखिया है, वह सब उसमें डाल दो और उसपर मिट्टीकी खाम लगा दो। फिर उस हँडियाके ऊपर एक दूसरी हँडिया जलसे भरकर रख दो। आठ पहरतक उसके नीचे आग लगाते रहो।

उसके बाद खोलकर देखोगे तो सोना दुगुना मिल जायगा।'

पण्डितजीने प्रसन्नचित्त हो अपनी स्त्रीका सारा-का-सारा गहना हँडियामें भरकर जैसे उसने बतलाया वैसे ही सब क्रिया की, किंतु ऊपरकी हँडियामें जल कम रहा, अत: वे जल लानेके लिये भीतर गये। पीछेसे बाबाजीने झट हँडियासे सारा गहना निकालकर अपनी झोलीमें रख लिया और उसमें उतने ही वजनके कंकड़-पत्थर भर दिये तथा हँडियामें पहलेकी तरह ही मिट्टीकी खाम लगा दी। इतनेमें ही पण्डितजी जल लेकर आ गये और ऊपर रखी हुई हँडियामें जल भर दिया। हँडिया कुछ टेढ़ी हो गयी थी, अत: पण्डितजीने उसे उठाकर सीधी कर दी। उठाते समय उन्हें हँडिया पहलेकी तरह ही भारी मालूम दी।

बाबाजी दो-तीन घंटे तो बैठे रहे, फिर कहने लगे कि 'कल मैं इसी समय आकर हँडियाकी खाम खोल दूँगा, तब दुगुना सोना मिल जायगा।' यह कहकर वह चल दिये। दूसरे दिन समयपर पण्डितजी बाबाजीकी प्रतीक्षा करते रहे, किंतु बाबाजी दिनभर नहीं आये। आते कहाँसे, वे तो अपना काम बनाकर चम्पत हो गये थे। तब तीसरे दिन पण्डितजीने स्वयं ही खाम खोली तो उसमें सब कंकड़-पत्थर निकले। पण्डितजीको बड़ा संताप हुआ, उन्होंने सारा हाल अपने घरवालोंसे कहा। सब लोग यह सुनकर दु:खी हुए। साधुकी बहुत खोज-खाज की; किंतु उसका कुछ भी पता नहीं लगा। वह साधु थोड़े ही था, वह तो समाजमें सच्चे साधु-संन्यासियोंपर भी संदेह उत्पन्न करा देनेवाला धूर्तशिरोमणि चोर था।

एक दिनकी बात है, उनके मुहल्लेमें एक लाल कपड़ेवाली ठगिनी आयी और उसने वहाँ एक मकान किरायेपर लेकर अपना अड्डा जमा लिया। उसने अपनेको तन्त्र-मन्त्रोंमें सिद्धिप्राप्त योगिनी बतलाया।

उसके पास स्त्रियाँ कोई रोग-निवारणके लिये, कोई पुत्रके लिये, कोई धनके लिये, कोई अपने लड़के-लड़कियोंकी विवाह-शादीके लिये—इस प्रकार अनेक कामनाओंको लेकर आने लगीं। वह योगिनी किसीके डोरा, यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र बाँध देती और किसीसे टोना कराती। इस प्रकार कराकर वह उनकी कार्य-सिद्धिके लिये उनमेंसे किसीको सालभरकी, तो किसीको छः महीनेकी और किसीको दो महीनेकी अवधि दे दिया करती। इस प्रकारकी धूर्तताद्वारा वह भोली-भाली स्त्रियोंसे गहने-कपड़े और रुपये ठगने लगी।

एक दिन रामदत्तकी स्त्री भगवानदेवी भी उसकी प्रशंसा सुनकर उसके पास पहुँच गयी और कहने लगी—'माताजी! मेरे कोई लड़का नहीं है, इसलिये ऐसा कोई उपाय बतलाओ, जिससे मेरे सालभरमें लड़का हो जाय।' योगिनीने कहा—'एक महीनेके अंदर ही तुम्हारे गर्भ रह जायगा। आनेवाले शनिवारकी रातको मैं तुमसे एक टोना कराऊँगी। तुम उस रातको दस बजे यहाँ आना। टोनेकी सामग्री तो सब हमारे पास मिल जायगी, तुम केवल गहने-कपड़े पहनकर सोलह श्रृंगार करके शनिवारकी रातको मेरे पास चली आना।' भगवानदेवीने वैसा ही किया। वह शनिवारकी रातमें सज-धजकर उसके पास गयी। योगिनीने उसके सब गहने-कपड़े खुलवाकर एक कोठरीमें रखवा दिये और कोठरीको बंद करके ताला लगाकर चाभी भगवानदेवीको सौंप दी। जब रात्रिके ठीक बारह बजे, तब योगिनी सिंदूर, तेल, मिट्टीका करवा और तिकटी लेकर भगवानदेवीके साथ चौराहेपर गयी। चौराहेपर जाकर उसने तिकटीपर करवा टिकाकर उसमें तेल और सिंदूर डाल दिया तथा भगवानदेवीको एक मन्त्र बताकर कहा—'तुम इस मन्त्रका यहाँ एक घंटे जप करती रहो। रातका समय है, घर सूना है, मैं घरकी रखवालीके लिये जाती हूँ।

एक घंटे बाद इस करवेको लेकर मेरे पास चली आना।'

योगिनी मकानपर पहुँची और कोठरीके तालेमें दूसरी चाभी लगाकर उसमें जो गहने-कपड़े रखे थे, सब लेकर वहाँसे चल दी। जब भगवानदेवी एक घंटेके बाद उसके घरपर आयी तो देखा कि वहाँ योगिनी नहीं है और कोठरी खुली पड़ी है। कोठरीमें गहने-कपड़े कुछ भी नहीं हैं। यह देखकर वह रोने लगी। वह दुःखित हृदयसे लज्जित होकर अपने घरपर लौट आयी तथा घरवालोंको अपनी सारी दुःखकी कहानी कही। घरवालोंने उसे बहुत फटकारा। इसके बाद उन्होंने योगिनीकी बहुत खोज की, किंतु कुछ भी पता नहीं चला। तब मकान-मालिकसे उसका पता पूछा। मकान-मालिकने कहा—'हमें तो उसने एक महीनेका भाड़ा अग्रिम दे दिया था और हमारे यहाँ तो प्रतिदिन ही ऐसे मुसाफिर आते-जाते रहते हैं। हमें क्या पता कि वह योगिनी कौन थी और कहाँ गयी?'

इन सब घटनाओंको देख-सुनकर सोमदत्तकी स्त्री रामदेवीने सोचा—'बहिन रोहिणीका, सासजीका, हमारी देवरानीका सब-का-सब गहना चला गया, केवल मेरा गहना ही शेष बचा है। छोटी बहूके जानेके बाद पैसा-रोजगार सब बंद हो गया। अब घरवाले मेरे गहनोंको ही बेचकर काम चलायेंगे और कोई रास्ता नहीं दीखता है।' यह सोचकर वह अपना सारा गहना अपने छोटे भाईके पास नैहरमें रख आयी। उसका नैहर उसी शहरमें दूसरे मुहल्लेमें था। उसका भाई बड़ा बदमाश और बेईमान था। उसकी नीयत पहलेसे ही खराब थी। उसने रामदेवीका सारा गहना बेचकर रुपये अपने कारबारमें लगा दिये। थोड़े दिनोंके बाद उसने यह झूठा हल्ला फैला दिया कि रातमें चोर आकर ताला तोड़कर सारा माल ले गये। प्रातःकाल होते ही वह रोने लगा! लोग इकट्ठे हो गये। पुलिस भी

आ गयी। सारे शहरमें बात फैल गयी, तब रामदेवीको भी अपने भाईके यहाँ चोरी होनेका पता लगा। वह तुरंत दौड़कर भाईके पास गयी और बोली—'भैया! मेरा गहना तो बच गया है न?' भाईने झुँझलाकर कहा—'तेरे गहनेके कारण ही तो हमारे घर यह काण्ड हुआ। हमारे पास तो धरा ही क्या था, जो चोर लगते? हमारे तो जो कुछ था, वह भी तुम्हारे गहनेके साथ चोर ले गये।' रामदेवी फिर बोली—'भैया! मेरा गहना तो मिलना ही चाहिये।' भाई कुपित होकर कहने लगा—'चल यहाँसे। फिर कभी मुँह मत दिखाना। तेरे कारणसे ही हम बरबाद हो गये।' वह बेचारी दुःखित होकर लौट आयी और सारा हाल अपने ससुरालवालोंको कहा। उन्होंने डाँट-फटकार भी की, पर फिर क्या हो सकता था!

तदनन्तर सब लोगोंने मिलकर यह निश्चय किया कि अपना-अपना खर्च सब अपनी-अपनी कमाईसे चलावें। इसपर सोमदत्त और रामदत्त तो अपनी स्त्रियोंको लेकर अलग रहने लगे और शेष सब एक साथ रहने लगे।

(७)

एक दिन जब सब घरवाले घरमें इकट्ठे बैठे हुए थे, पण्डित देवदत्तजीने सरल हृदयसे कहा—'हमने थोड़े-से अपराधके कारण छोटी बहूको घरसे निकाल दिया, यह बड़ा भारी अपराध किया। इसी कारण हमारी यह दुर्दशा हुई है। वह बड़ी भाग्यशालिनी, बुद्धिमती और उच्च विचारकी स्त्री थी। यदि वह अपने घरमें रहती तो हमलोगोंपर यह सब विपत्तियाँ कभी नहीं आतीं। अन्तमें सबने यह विचार किया कि हमलोगोंको उसके पास चलना चाहिये। पर लज्जाके कारण किसीकी भी जानेकी हिम्मत नहीं होती थी। किसी प्रकार घरकी यह भीतरी खबर सुशीलाके पास पहुँच गयी। सुशीलाने सोचा—

'मेरे घरवाले मेरे पास आना चाहते हैं, पर इसमें मेरा बड़प्पन नहीं है। इसलिये मुझे ही उनके पास चलना चाहिये।' यों सोचकर दूसरे दिन वह स्वयं ही ससुरालमें चली आयी और श्रद्धा, प्रेम, विनय तथा सरलताके[१] साथ सबके चरणोंमें नमस्कार किया। उसे देखकर सब प्रसन्न हुए और साथ ही अपने कृत्यको देखकर दुःखित और लज्जित हुए। सुशीलाने कहा— 'मैंने सुना कि आपलोग मेरे पास आनेका विचार कर रहे हैं, यह सुनकर मैं ही आपके पास आ गयी; क्योंकि मैं सबसे छोटी हूँ। इसलिये मेरा ही आपके पास आना उचित है। कभी-कभी मेरे मनमें आपकी सेवाके भाव आते, किंतु आपलोगोंके द्वारा निकाली जानेके कारण यहाँ आनेकी मेरी हिम्मत नहीं हुई, इसलिये आप मेरे अपराधको क्षमा करें।'

पण्डितजीने कहा—'बेटी! तुम्हारा तो एक मामूली अपराध था, हमलोगोंने बहुत बड़ा अपराध कर डाला।' पण्डितजीको क्या पता कि बहूका कोई अपराध था ही नहीं, वह तो षड्यन्त्र था। घरकी हालत बिगड़ जाने तथा सबपर विपत्ति आ जानेसे षड्यन्त्रकारी स्त्रियोंका पाप काँप गया। उनके मनमें ईर्ष्याके बदले पश्चात्तापकी आग जल उठी। वे सभी संतप्त हो गयीं और उन्हें निश्चय हो गया कि हमारी दुर्दशाका सच्चा कारण हमारे द्वारा निर्दोष सुशीलापर किया जानेवाला अत्याचार ही है। उनके संतप्त हृदयके तप्ताश्रु उनकी आँखोंसे बहने लगे। तब सोमदत्त और रामदत्तकी स्त्रियोंने हाथ जोड़कर काँपते हुए कण्ठसे अपनी साससे कहा—'छोटी बहूका कुछ भी अपराध नहीं था। हमीं लोगोंने डाहके कारण इसपर झूठा कलंक लगाया था, उसीका हमें यह फल मिला।' तब रोहिणी दुःखित हृदयसे कहने लगी—'छोटी भाभीका तो कुछ भी अपराध है ही नहीं और न बड़ी भाभियोंका ही कोई विशेष अपराध है। सारे षड्यन्त्रको रचनेवाली, घोर अपराध करनेवाली दुष्टा

तो मैं हूँ। मैंने ही भाभियोंके कंकण, हार, अपनी साड़ी और लहँगा एक थैलीमें भरकर उसे सीकर रसोइयाके हाथ उस बुढ़ियाके पास भिजवाया था, वह चिट्ठी भी मैंने ही लिखी थी और पिताजीके पास झूठी शिकायत भी मैंने ही की थी। इस सारे पापकी जड़ मैं हूँ। आज मैं पश्चात्तापकी आगसे जली जा रही हूँ। पृथ्वी फट जाय तो मैं उसमें समा जाऊँ। इस निरपराध शुद्ध हृदयकी भाभीसे मैं क्षमा भी किस मुँहसे माँगूँ?'

ये सारी सच्ची बातें सुनकर सुशीलाका मन पिघल गया और वह हाथ जोड़कर विनयपूर्वक सबसे बोली—'जो कुछ भी हुआ अब आप उन बातोंको हृदयसे भुला दें! मैं तो आपलोगोंके कृत्यको कोई अपराध ही नहीं मानती। फिर क्षमा[२२] कैसी?' यह सुनकर उसका पति मोहनलाल फूट-फूटकर रोने लगा और अपने किये हुएपर बार-बार पश्चात्ताप करता हुआ कहने लगा—'मैं धोखेसे मारा गया। अब मुझे इसका क्या प्रायश्चित्त करना चाहिये?' सुशीलाने कहा—'पतिदेव! आप किसी बातका विचार न करें। आपलोगोंमें किसीका भी कोई दोष नहीं है— यह तो मेरे पूर्वकृत पापोंका फल है। अब आपलोग इन सब बातोंको भुला दें और मुझे पहलेकी तरह ही अपनी दासी समझें। मेरे पास जो कुछ सम्पत्ति है, वह आपकी ही है। आप उस सम्पत्तिको यहाँ मँगवा लें।'

यह सुनकर सब लज्जित हो गये और कहने लगे—'तुम्हारी सब चीजें हम कैसे मँगवायें?' सुशीला बोली—'वह सब तो आपकी ही है, मैं भी आपकी ही हूँ। यह सब ईश्वरने हमारे भलेके लिये ही किया था; क्योंकि यदि भगवान् ऐसा नहीं करते तो आज यह सम्पत्ति और हजार रुपये मासिक आयका स्थायी संयोग कैसे बैठता?' यह कहकर सुशीलाने अपनी सारी चल-सम्पत्ति अपने आदमियोंद्वारा

वहीं मँगवाकर निःस्वार्थभावसे ससुरके चरणोंमें अर्पित[२३] कर दी। उसके अन्य सब काम भी ससुरालवालोंकी देख-रेखमें वैसे ही चलते रहे और वह अब ससुरालमें ही रहने लगी। सुशीलाके इस पवित्र व्यवहारको[२४] देखकर सब लोग मुग्ध हो गये।

जब खेलकर आते हुए इन्द्रसेन और इन्द्रसेनीने माँको बहुत दिनोंके बाद देखा तो वे झट उसके चरणोंमें गिर पड़े। माँने उन्हें उठाकर अपनी छातीसे लगा लिया। रसोइया और नौकर तो अपने भीषण अपराधपर काँप रहे थे और जमीनमें गड़े-से जा रहे थे। उनके शरीरसे पसीना बह रहा था और आँखोंसे पश्चात्तापके गरम-गरम आँसू। उनका मूक पश्चात्ताप देखकर सुशीलाने उन्हें आश्वासन दिया और शान्त किया। आज उन दोनोंका भी जीवन बदल गया।

फिर सुशीलाने कहा—'मैंने सुना है, हमारे दोनों जेठ-जेठानियाँ अलग होकर रहते हैं, किंतु उनका अलग रहना मैं सहन नहीं कर सकती। वे पहलेकी-ज्यों ही शामिल होकर रहनेकी कृपा करें।' वे सुशीलाके इस बर्तावको देखकर मुग्ध हो गये, वे 'ना' नहीं कर सके। तदनन्तर सभी शामिल होकर रहने लगे। सुशीलाके प्रभावसे सब सदाचारी और सच्चरित्र बन गये। उनके सम्बन्धमें जो कुछ अपवाद फैला हुआ था, वह सब शान्त हो गया और उनका घर अन्य सब लोगोंके लिये एक आदर्श घर हो गया।

(८)

सुशीला सबके साथ समव्यवहार किया करती। जो कुछ आप खाती-पहनती, वह घरमें सबको समानभावसे देकर खाती-पहनती। उसका खाने-पीने, पहननेमें कोई भेद नहीं था। जो चीज वह अपने पति और बालकोंको खिलाती-पहनाती, वही अपने जेठ-जेठानियों और सास-ससुर तथा ननदको भी दिया करती।

एक दिनकी बात है, वह अपने बच्चे-बच्चीको दाख, छुहारा, बादाम, नौजा, पिस्ता आदि मेवा दे रही थी। इतनेमें ही उन बालकोंके साथ खेलनेवाले बाहरके कुछ बालक आ गये। सुशीलाने अपने बालकोंको न देकर पहले उन्हें दिया; और जो कुछ अपने बालकोंको दिया, उतना ही उन्हें दिया; किंतु उनमें जो चीज कुछ बढ़िया थी, वह तो बाहरके बालकोंको दी और जो कुछ घटिया थी, वह अपने बालकोंको दी। सुशीलाके इस बर्तावका उसके बच्चोंपर भी बड़ा अच्छा असर पड़ा। उसके लड़के-लड़की बड़े सुशील थे। उन्होंने भी अपने हिस्सेका आधा भाग उन बाहरके बालकोंको दे दिया। सच्ची सुशीला माताके लड़के ऐसे क्यों न होते?

सुशीला अपने पतिकी विशेष सेवा किया करती थी और कभी-कभी अपने पतिके साथ कथा या व्याख्यान सुनने जाया करती तो साथमें उसका लड़का और लड़की भी जाया करते थे। बालकोंमें स्वाभाविक ही चंचलता होती है, किंतु इसके बालक शान्त प्रकृतिके थे; क्योंकि सुशीलाका स्वभाव स्वाभाविक ही चंचलतारहित[२०] था। वे वहाँ शान्तिपूर्वक चुपचाप बैठकर बड़े ध्यानसे व्याख्यान सुना करते। सुशीला बालकोंको नित्य नियमपूर्वक अच्छी शिक्षा दिया करती थी। वह कहा करती—'सूर्योदयसे पूर्व उठना, नित्य बड़ोंको प्रणाम करना, झूठ, कपट, छिपाव, हिंसा-चोरी आदि कभी नहीं करना। हमेशा सत्य बोलना, किसीको अपशब्द न कहना, आपसमें लड़ाई, मार-पीट, गाली-गलौज नहीं करना, सूर्यनारायणको नित्य अर्घ्य देना, कोई भी चीज भगवान्‌के अर्पण किये बिना न खाना, सबकी सेवा करना, बाजारकी बनायी हुई चीजें न खाना; बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, भाँग, गाँजा आदि मादक वस्तुओंका सेवन न करना; नाटक, सिनेमा, क्लब आदिमें कभी नहीं जाना; कथा-कीर्तन, सत्संगमें शान्तिपूर्वक सुनना; कोई भी चीज मिले उसे उपस्थित मित्रोंको देकर खाना; बड़ोंकी आज्ञाका पालन करना और सदा कर्तव्यपरायण रहना चाहिये। कहीं

दूसरेके घरपर जायँ तो वहाँ कोई चीज माँगनेकी तो बात ही क्या, उनके देनेपर भी नहीं लेनी चाहिये। बस, अपनेसे जो कुछ बने, दूसरोंकी सेवा करनी चाहिये, कभी दूसरोंकी सेवाका पात्र नहीं बनना चाहिये। बच्चोंके लिये कितनी सुन्दर शिक्षा है!

इस प्रकार घरमें नित्य-नियमसे उपदेशकी बातें और कथा-कीर्तन हुआ करता था। इसका बालकों तथा घरवालोंपर बड़ा अच्छा असर पड़ने लगा और वे सब सुशिक्षित हो गये।

(९)

एक दिन सुशीलाके पिता पण्डित गोविन्दरामने उसे बुलानेके लिये उसके ससुरके पास आदमी भेजकर कहलाया—'हमारी एक प्रार्थना है—सुशीलाको आये बहुत दिन हो गये; अतः एक बार बच्चोंसहित उसे हमारे घरपर भेजें।' बुलावा आनेपर सुशीलाने भी सरलताके साथ निवेदन किया कि 'मुझे माता-पितासे मिले बहुत दिन हो गये, इसलिये आपकी आज्ञा हो तो मैं घर जाकर उनके दर्शन कर आऊँ और आपकी अनुमति हो तो मैं वहाँ कुछ दिन ठहर जाऊँ।' सास और ससुरने बड़ी प्रसन्नतासे कहा—'जा सकती हो; किंतु बहुत अधिक विलम्ब न करना; क्योंकि हमारे दिन तुम्हारे बिना कैसे कटेंगे।' इस प्रकार कहकर विश्वासी पुरुषको साथ देकर उसे नैहर पहुँचा दिया।

सुशीलाने बालकोंसहित वहाँ जाकर माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम किया। माता-पिताने पूछा—'घरपर सब प्रसन्न तो हैं?' सुशीला बोली—'ईश्वरकी कृपासे सब कुशल है, किंतु मैं यहाँ अपने भाई रामलाल और भौजाईको नहीं देखती हूँ, सो क्या बात है?' पण्डित गोविन्दरामजीने कहा—'वह कई दिनोंसे किरायेपर मकान लेकर हमसे अलग ही रहता है; जो कुछ कमाता है, अपने खाने-पीने और मित्रोंकी खातिरमें लगा देता है। हमलोग तो अब बूढ़े हो गये, कमानेकी शक्ति नहीं रही, पहलेकी जायदादको बेचकर ही अपना काम चलाते हैं।' सुशीला बोली—'क्या भाभीके कहनेपर ही भैया अलग हो गये अथवा

और कारण है?' माताने कहा—'ना बेटी! वह तो बहुत ही भले घरकी लड़की है। मैं उसे कभी कुछ कह देती भी तो वह नाराज नहीं होती और न कभी रूठती। उसका स्वभाव बड़ा सुशील है, लड़ना तो वह जानती ही नहीं। कोई उसे खोटी-खरी सुना देता तो भी वह उसे हँसकर टाल देती। अब भी वह मेरा पक्ष लेकर समय-समयपर रामलालको समझाया करती है। उसके स्वभाव, सेवा और बिछोहको याद कर-करके मैं रोया करती हूँ। रामलाल भी बहुत ही भला था; किंतु आजकलके उद्दण्ड लड़कोंके संगके प्रभावसे वह हमलोगोंसे अलग हो गया।'

सुशीला बोली—'माँ! मैं भाई-भौजाईको समझाकर यहाँ ले आऊँ तो इसमें तुम्हारी क्या राय है?' माताने कहा—'ऐसा हो जाय तो बेटी! हमारा बड़ा सौभाग्य है।'

भाई रामलाल प्रयागमें ही कुछ दूर दूसरे मुहल्लेमें रहते थे। सुशीला अपने कुटुम्बके एक आदमीको लेकर बालकोंसहित भाईके यहाँ गयी। घरमें रामलाल तो थे नहीं, भाभी बैठी थी, सुशीलाको आते देखकर वह उठी और उसने बड़े ही आदर और प्रेमका बर्ताव किया। सुशीलाने भी बालकोंसहित उसके चरणोंमें प्रणाम किया। जब भाभी कुछ संकोच करने लगी, तब सुशीलाने कहा—'आप बड़ी होनेके कारण मेरी तो माँके समान हैं, इसमें संकोचकी कौन-सी बात है। बड़ोंके चरणोंमें प्रणाम करना बालकोंका कर्तव्य ही है।' भाभी लज्जित होकर बोली—'बहिनजी! आप माताजीके पास आयी हैं, यह मुझे मालूम हो गया था, किंतु दुःखकी बात है कि मैं आपके भाईके डरसे नहीं जा सकी।' सुशीलाने कहा—'इसके लिये आपको चित्तमें कोई विचार नहीं करना चाहिये। माँ तो आपके स्वभाव और सेवाको याद कर-करके भूरि-भूरि प्रशंसा करती हुई आपके वियोगमें रोया करती है।'

इतनेमें ही भाई रामलाल आ गये। सुशीलाने झट उठकर बालकोंसहित भाईके चरणोंमें नमस्कार किया। रामलालने भी सुशीलाके साथ बड़े आदरका बर्ताव किया। कुशल-संवादके बाद सुशीला

बोली—'भैया! आज तुम्हें माता-पितासे अलग देखकर मुझे बड़ा दुःख हो रहा है।' रामलालने कहा—'बहिन! तुम्हारे आनेकी खबर मुझे मिल गयी थी। तुमसे मिलनेकी मेरी बहुत ही इच्छा थी, परंतु मेरे मनमें यह भाव आया कि मैं यदि घर जाऊँ तो कहीं माता-पिता मेरा अपमान न कर दें और तुम्हें यहाँ घरपर भी इसीलिये नहीं बुलाया कि शायद वे तुम्हें यहाँ नहीं भेजेंगे।' सुशीला बोली—'भैया! इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है, यह तो मेरा ही दोष है कि मैं कल ही तुम्हारा दर्शन नहीं कर सकी, पर भैया! जब मैं ससुराल गयी थी तब तो तुम दोनों ही माता-पिताकी सेवा और आज्ञापालन खूब किया करते थे। तुम्हारे उन गुणोंको याद करके मुझे विस्मय होता है कि तुम उनसे अलग होकर कैसे रहने लगे? मेरे व्यवहारकी त्रुटियाँ देखकर तुम तो मुझे शिक्षा दिया करते थे, वे बातें मुझे याद आती हैं।'

रामलालने कहा—'बहिन! तुम्हारी बात सुनकर मुझे लज्जा होती है। मेरे अलग होनेका कारण यह हुआ कि मेरे मित्रगण जो मेरे पास आया करते, वह माताजी और पिताजीको बुरा मालूम देता। इसे देखकर मेरे मित्रोंको अत्यन्त कष्ट होने लगा और उन्होंने मुझको यह राय दी कि तुम सब कुछ माता-पिताके पास छोड़कर उनसे अलग हो जाओ। इसमें तुम्हारी कोई निन्दा नहीं होगी। तुम विद्वान् हो, योग्य हो; तुम्हें अपनी कमाईसे पेट भरना चाहिये। माता-पिताके धनका आश्रय क्यों लेना चाहिये।' उनकी इन बातोंमें आकर मैं माता-पितासे अलग हो गया। 'बहिन! तुम समझदार हो, जैसा तुम्हारा नाम है वैसी ही तुम गुणवती हो, अतः मुझे राय दो कि अब मुझे क्या करना चाहिये।'

इसपर सुशीला बहुत ही कोमल और मृदुलताभरे[१८] शब्दोंमें बोली—'भैया! तुम्हें मैं राय दूँ? मुझमें जो कुछ अच्छापन दीखता है, वह तो तुम्हारी शिक्षाका ही प्रभाव है। मैं कुछ कहूँगी तो तुमसे सीखी हुई बात ही कहूँगी। मैं जब छोटी थी तभी तुम मुझे यही शिक्षा दिया करते कि

सैकड़ों वर्ष भी माता-पिताकी सेवा करके मनुष्य उनका बदला नहीं चुका सकता। माता-पिताकी सेवा ही परम धर्म है और सब उपधर्म है*। आज तुम्हें माता-पितासे अलग देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है तथा तुम्हारे मित्रोंके सम्बन्धमें तो माता-पिताने जो कुछ भी कहा, वह तुम्हारे हितके लिये ही कहा होगा। जो मित्र माता-पितासे दूर कर दें, उनका संग किस कामका? यदि तुम्हारे वे मित्र समझदार होते तो सहज ही मुक्तिके उपायरूप परम कल्याणकारी माता-पिताके सेवाकार्यसे तुम्हें वंचित क्यों करते? इससे तुम्हें सोचना चाहिये था कि ये ऐसा करके अपना मतलब गाँठना चाहते थे कि तुम्हारा हित। भैया! माता-पिता तो तुम्हारे वियोगमें तुम्हारे गुण और सेवाको याद करके रोया करते हैं। संसारमें तुम्हारे गुण और आचरणोंकी ख्याति है और अच्छे-अच्छे पुरुषोंके हृदयोंपर तुम्हारा अच्छा प्रभाव अंकित है। तुम माता-पितासे अलग होकर रहते हो, इससे उन सज्जनोंपर कैसा बुरा असर होगा और वे जब तुम्हारी निन्दा-अपमान करेंगे तब उसे तुम कैसे सहन करोगे? माता-पिताकी सम्पत्तिसे तुम्हें संकोच और घृणा क्यों होनी चाहिये? माता-पितासे हमलोग कैसे छूट

---

* मनुजीने कहा है—

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥

(२। २२७)

'मनुष्यकी उत्पत्तिके समयमें जो क्लेश माता-पिता सहते हैं, उसका बदला सैकड़ों वर्षोंमें भी सेवादि करके नहीं चुकाया जा सकता।'

अतएव—

त्रिष्वेतेष्वितिकृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते।
एष धर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते॥

(२। २३७)

'माता-पिता और आचार्य—इन तीनोंकी सेवासे ही पुरुषका सब कृत्य समाप्त हो जाता है अर्थात् उसे कुछ भी करना शेष नहीं रहता। यही साक्षात् परम धर्म है; इसके अतिरिक्त अन्य सब उपधर्म कहे जाते हैं।'

सकते हैं? हमलोगोंके शरीरमें भी तो जो कुछ है, सब माता-पिताका ही है। मेरी तो राय यह है कि उनके चरणोंमें जाकर उनसे क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिये; इसमें विलम्ब करना उचित नहीं। माता-पिताकी कोई गलती भी हो तो बड़ोंकी गलती कभी माननी ही नहीं चाहिये।'

इतनेमें भाभी बोल उठी—'बहिनजी! मुझे तो सास-ससुरसे अलग रहनेमें न तो कोई सुख है और न मेरा मन ही लगता है। समय-समयपर मैं इनसे प्रार्थना भी करती हूँ। पर पता नहीं, विधाताने मुझे उनकी सेवासे क्यों वंचित रख छोड़ा है?' रामलाल बोले—'बहिन! माता-पिताके बिना बुलाये और बिना उनकी सम्मति लिये जानेमें लज्जा होती है। कहीं वे मेरा अपमान तो नहीं कर देंगे?' सुशीलाने कहा—'भैया! उनकी तो सम्मति ही है। वे तो तुम्हारे वियोगमें रोते हैं, उनके पास जानेमें लज्जा किस बातकी? मेरी समझमें वे तो तुम्हारे जानेसे बहुत प्रसन्न होंगे। और माता-पिताके पास जानेमें अपमानकी कौन-सी बात है? उनके द्वारा किया हुआ अपमान तो मानसे भी बढ़कर है।'*

सुशीलाकी उपर्युक्त हितभरी बातें सुनकर रामलाल और उसकी पत्नी दोनों सुशीलाके साथ माता-पिताके पास घर आ गये तथा दोनों अपने कृत्यपर अत्यन्त पश्चात्ताप करते हुए उनके चरणोंपर गिरकर रोने लगे ।

माता-पिताने कहा—'बेटा! आज बड़े सौभाग्यकी बात है, आज हमारा दिन बहुत ही अच्छा है।' फिर उन्होंने सुशीलासे कहा—'बेटी

---

* किसी कविने कहा है—

गीर्भिर्गुरूणां परुषाक्षराभिस्तिरस्कृता यान्ति नरा महत्त्वम्।
अलब्धशाणोत्कषणा नृपाणां न जातु मौलो मणयो वसन्ति॥

'जब मनुष्य गुरुजनोंकी कठोर शब्दोंसे युक्त वाणीद्वारा अपमानित किये जाते हैं, तभी महत्त्वको प्राप्त होते हैं, अन्यथा नहीं। जैसे कि अच्छी श्रेणीके रत्न भी जबतक शाणपर घिसकर उज्ज्वल नहीं किये जाते, तबतक राजाओंके मुकुटोंमें नहीं मढ़े जाते।'

सुशीला! तुमने जो आज महत्कार्य किया है, इसे हम आजीवन कभी नहीं भूलेंगे।' सुशीला बोली—माँ! तुम क्या कह रही हो? इसका जो कुछ श्रेय है वह तो तुमको, पिताजीको और भाईजी-भौजाईजीको ही है। मैं तो निमित्तमात्र ही हूँ, मुझमें भी जो कुछ अच्छापन तुम देखती हो, वह सब भी आपलोगोंकी ही कृपा है।'

सुशीलाके इस प्रकार अभिमानरहित[२६]—व्यवहारको देखकर सब मुग्ध हो गये। सुशीलाके पास दो मोहन-मन्त्र थे, उनसे वह कोई भी क्यों न हो, उसे अपने अनुकूल बना लेती थी। वे मन्त्र ये थे—(१) अपने स्वार्थका त्याग करके निष्काम-भावपूर्वक सब प्रकारसे उसके हितकी चेष्टा करना और (२) उसके अवगुणोंको भुलाकर उसके गुणोंका वर्णन करना। इन्हींसे उसने अपने भाईके हृदयको भी पलट दिया।

इसके अनन्तर रामलालने अपने मित्रोंसे प्रेम और विनयपूर्वक प्रार्थना कर दी कि 'मुझे ही कभी अवकाश होगा तो मैं आपके घरपर आकर मिल सकता हूँ, माता-पिताके पास मैं आपका यथोचित सत्कार करनेमें लाचार हूँ।'

सुशीला पिताके घरपर कुछ दिनोंतक रही, परंतु ससुरालमें अपने प्रति होनेवाले अत्याचारको लेकर किसीकी भी कभी किंचित् भी निन्दा-चुगली[१५] नहीं की। माता-पिता और भाई-भौजाई उसे खाने-पीने, पहननेके लिये अनेक पदार्थ देते, पर उनके आग्रह करनेपर भी वह नहीं लेती। यदि कभी उनके संतोषके लिये यत्किंचित् ले भी लेती तो अनासक्तभावसे ही लेती, उसकी उन पदार्थोंके प्रति किंचित् भी आसक्ति या लोलुपता[१७] नहीं थी। उसका व्यवहार भी बड़ा त्यागमय और प्रशंसनीय था।

तदनन्तर ससुरालसे आग्रहपूर्वक बुलावा आनेपर माताको विनय और प्रेमसे समझाकर वियोगके दुःखको प्रकट करती हुई सुशीला विश्वासी पुरुषके साथ अपने ससुराल चली आयी। सुशीलाको घरमें आये देखकर ससुरालके सभी लोग बड़े आनन्दित हुए।

(१०)

इधर सुशीलाकी लड़की इन्द्रसेनीको द्वादश वर्षकी विवाहके योग्य देखकर उसके सास-ससुरको बड़ी चिन्ता रहा करती थी। अतः एक दिन उन्होंने छोटी बहूसे कहा—'इन्द्रसेनी विवाहके योग्य हो गयी है। तेरे प्रभावके कारण कई लोग अपने साथ सम्बन्ध करना चाहते हैं। तेरी राय किसके साथ सम्बन्ध करनेमें है?' सुशीलाने अपनी साससे कहा—'इसमें मेरी राय क्या लेनी है? आप जिसके साथ सम्बन्ध करना उचित समझें, उसीमें हम सबको प्रसन्न रहना चाहिये। मैंने तो आपलोगोंके मुखसे ही यह सुना है कि बालक चाहे गरीब घरका हो, किंतु उसके बल, विद्या, बुद्धि, योग्यता, आचरण, स्वभाव और चरित्र आदि देखने चाहिये। उसके कुटुम्बवालोंके तथा विशेषकर माता-पिताके स्वभाव और आचरण अच्छे होने चाहिये।' यह सुनकर सब बड़े प्रसन्न हुए।

इन्द्रसेनीके प्रारब्ध और माता सुशीलाके प्रभावके कारण सुशीलाके इच्छानुकूल ही घर और बालकका स्वतः संयोग लग गया। पण्डित दामोदर शास्त्रीके सुपुत्र शिवकुमारके साथ इन्द्रसेनीका वाग्दान कर दिया गया। पण्डित दामोदरजीकी सुशीलापर बहुत ही श्रद्धा थी, इसलिये उन्होंने अपनी पत्नीको विवाहके विषयमें सलाह करने सुशीलाके पास भेजा। घरपर आते ही सुशीलाने उनका यथावत् सत्कार किया। तदनन्तर दामोदरजीकी पत्नीने कहा—'आपके साथ सम्बन्ध होकर विवाह आदर्श होना चाहिये। आपके घरमें तो कुरीतियाँ और फिजूलखर्च होगा ही नहीं, हमलोग भी अपने सुधारके लिये आपकी रायके अनुसार ही करना चाहते हैं।' इस प्रकार विशेष आग्रह और श्रद्धापूर्वक पूछनेपर सुशीलाने कहा—'बारूद, खेल-तमाशे, सिनेमा, थियेटर, उछाल, अधिक रोशनी आदिमें व्यर्थ खर्च नहीं करना चाहिये। विवाहमें गाली-गलौज, बुरे गीत गाना, चौपड़-ताश खेलना, बहुत-से

बाजे बजाना आदि भी नहीं करना चाहिये। विवाह तो अच्छे-अच्छे विद्वानोंको बुलाकर विधि-विधानसे भलीभाँति होना चाहिये, इसमें अधिक भीड़-भाड़ नहीं होनी चाहिये। हमारी ओरसे क्या करना चाहिये सो कृपया आप बतलाइये।'

पण्डित दामोदरजीकी पत्नी बोली—'हमलोग आपको क्या आदेश दें! हमलोग तो आपकी ही शिक्षाके अनुसार चलना चाहते हैं। आपने इस विषयमें कैसा विचार किया है, यह सुननेके लिये हमलोग उत्सुक हैं। यदि उचित समझें तो आप बतलानेकी कृपा करें।'

इसपर सुशीलाने कहा—'हँसी-मजाक, नाच तथा बुरे गीत तो हमारे यहाँ पहलेसे ही बंद हैं। भाँग, तम्बाकू, सुलफा, गाँजा आदि मादक वस्तु, सोडा-बर्फ, लेमोनेड देना, होटलमें भोजन करना, पार्टी देना और सेंट आदिसे सत्कार करना शास्त्रविरुद्ध तो है ही, प्रत्युत सत्कारके नामपर उनका अपमान करना है। शास्त्रके अनुसार हलद्धात आदि करनेके बाद देवताओंकी विधिवत् पूजा कराकर अच्छे-अच्छे विद्वानोंकी सम्मतिके अनुसार कन्यादान करनेका विचार है। आपलोगोंका असली सत्कार तो श्रद्धा और प्रेमके व्यवहारसे होता है; उसकी तो हमलोगोंमें कमी है, भोजन तथा पान-सुपारी, लौंग, इलायचीका प्रबन्ध साधारण तौरपर किया गया है। दहेज-धन देनेके लिये तो हमारे पास है ही क्या, हम तो एक अबोध बालिकाको आपकी सेवामें अर्पण करके अपनेको पवित्र करना चाहते हैं। आप-जैसे सरल और त्यागी मनुष्योंके साथ सम्बन्ध हमारे बड़े ही भाग्यसे हुआ है। आपके व्यवहारको देखकर हमलोग सब मुग्ध हो रहे हैं।'

इसके अनन्तर समयपर दोनों ओरसे श्रद्धा, विनय और प्रेमका व्यवहार होते हुए उपर्युक्त पद्धतिके अनुसार बहुत ही प्रशंसनीय सात्त्विक और आदर्श विवाह सम्पन्न हुआ तथा परस्पर नमस्कार करनेके बाद बरातको विदा किया गया।

सोमदत्त, रामदत्त और मोहनलाल तीनों भाई सुशीलाके चलाये हुए व्यापार-कार्यको निजमें ही देखा करते और परस्पर सबका बहुत ही अच्छा प्रेममय व्यवहार था। घरमें स्त्रियोंका भी व्यवहार सुशीलाके सम्पर्कसे बहुत ही सुन्दर हो गया था। इस प्रकार कुछ काल बीतनेके बाद सुशीलाका लड़का इन्द्रसेन जब सोलह वर्षका हो गया, तब उसका विवाह भी पण्डित रघुनाथ आचार्यकी पुत्री गायत्रीसे कर दिया गया। वह विवाह भी पूर्वकी भाँति ही बहुत सात्त्विक, आदर्श और प्रशंसनीय हुआ। उसमें भी नाच, गीत, कुरीतियाँ और फिजूलखर्ची बिलकुल नहीं की गयी तथा इनकी ओरसे त्यागका व्यवहार रहा। पर श्रीरघुनाथ आचार्यका विशेष आग्रह होनेके कारण उनके संतोषके लिये नाममात्रका दहेज लेना पड़ा।

इस प्रकार लड़की और लड़केका विवाह होनेपर सब घरवाले निश्चिन्त होकर सुखपूर्वक अपने घरमें निवास करने लगे तथा परस्पर बड़े ही त्याग और प्रेमका व्यवहार करने लगे।

(११)

कुछ दिनोंके बाद पण्डित देवदत्तजीके श्वास-रोगके कारण शरीर दुर्बल हो जानेसे ज्वर हो गया। अनेक आयुर्वेदिक दवा की, किंतु कोई भी लागू न पड़ी। सुशीलाकी रात-दिन विनय और प्रेमपूर्वक की हुई सेवासे देवदत्तजी मुग्ध हो गये और बोले—'बेटी! तुम सर्वथा निर्दोष थीं और मैंने तुम्हें घरसे निकलवा दिया था, वह दुःख मेरे हृदयमें शूलकी तरह चुभता रहता है।' सुशीलाने ननद रोहिणीके द्वारा कहा—'ससुरजी! आपकी तो कोई गलती है ही नहीं। वह सब घटना तो धोखेसे हो गयी। उसका आपको कुछ भी विचार नहीं करना चाहिये। मैं जो आपसे बहुत दिनोंतक अलग रही, इसे मैं अपना दुर्भाग्य मानती हूँ। अब इस विषयमें आप अपनेको हेतु मानकर दुःख करेंगे तो उससे उलटा मेरे चित्तपर विचार होगा।' यह सुनकर पण्डितजीने कहा—

'बेटी! तू विचार मत कर। तेरी बात सुनकर अब मेरे चित्तमें कोई विचार नहीं रहा।'

इसके बाद पण्डितजीकी अवस्था और भी दब गयी। यह देखकर घरवालोंने स्थानको बुहार-झाड़कर साफ किया और फिर पवित्र जलसे धोकर उसपर गोबर तथा गंगाजलका चौका लगाया एवं उसपर तिल और सरसों बिखेरकर भगवान्का नाम लिखा। फिर उसपर पवित्र बालूकी शय्या बनाकर गंगाजीकी रेणुका छिड़क दी और उसपर रामनाम लिखकर मन्त्रोंद्वारा गंगाजलसे उसका मार्जन किया। उस बालूपर कुशा बिछाकर हाथसे बना हुआ शुद्ध सफेद वस्त्र बिछा दिया। तदनन्तर पण्डितजीका संकेत पाकर सोमदत्तने उन्हें पवित्र जलसे स्नान कराया और नवीन शुद्ध उत्तरीय तथा अधोवस्त्र पहनाकर उनका यज्ञोपवीत बदल दिया। इसके बाद उन्हें उस बालुकामयी शय्यापर सुला दिया और हाथसे बनी हुई एक नवीन, शुद्ध, सफेद चद्दर ओढ़ा दी। उनके पास एक नूतन तुलसीवृक्षका गमला रख दिया। गलेमें तुलसीकी माला पहना दी, मस्तकपर चन्दनसे तिलक कर दिया। मस्तकके नीचे बहुत कोमल और हलकी-सी एक गीताकी पुस्तक रख दी। पण्डितजी श्रीविष्णुरूपके उपासक थे, अतः एक छोटी-सी शालग्रामजीकी मूर्ति उनके वक्षःस्थलपर रख दी। फिर पत्र-पुष्प, धूप-दीप आदि षोडशोपचारसे भगवान्की पूजा की गयी और आरती उतारी गयी। इसके बाद सोमदत्तने पण्डितजीको तुलसी और गंगाजल पिलाकर गीताके आठवें अध्यायका अर्थसहित पाठ सुनाया। तत्पश्चात् सब मिलकर श्रद्धा-प्रेमपूर्वक मुग्ध होकर एक ताल और एक स्वरसे भगवान्के नामोंका कीर्तन करने लगे। पण्डितजीके सामने भगवान् श्रीविष्णुका सुन्दर चित्र दीवालपर टँगा हुआ था ही, उसे देखते हुए भगवान्के नाम, रूप, गुण, प्रभावको याद करते हुए तथा भगवान्के नामोंका कीर्तन सुनते हुए पण्डितजी भगवान्के परमधाम सिधार गये।

इस कहानीसे विशेषकर माता-बहिनोंको यह शिक्षा लेनी चाहिये कि वे सुशीलाको आदर्श मानकर उसका अनुकरण करें अर्थात् अपने साथ बुराई करनेवालेके साथ भी भलाई करें। बालकोंके साथ वात्सल्यभाव, समानवालोंके साथ मैत्री-भाव और बड़ोंके प्रति श्रद्धा-भक्ति और विनय-भावसे उनकी सेवा करें। निःस्वार्थभावसे उत्तम कार्य करके मान-बड़ाईसे रहित होकर उसका श्रेय दूसरोंको ही देनेके लिये सत्यकी रक्षा करते हुए चेष्टा करें; घोर आपत्ति पड़नेपर भी काम, क्रोध, लोभ, लज्जा, भय आदिके वशमें होकर धैर्य, धर्म, ईश्वरभक्ति तथा जान-बूझकर प्राणोंके त्यागका कभी विचार ही न करें। सास-ससुर, माता-पिता, पति आदि बड़ोंकी तन, मन, धनके द्वारा कर्तव्य समझकर निःस्वार्थभावसे विनय-प्रेमपूर्वक सेवा करें; बालकोंको अपने आचरण और वाणीद्वारा अच्छी शिक्षा दें; बालकोंके विवाहमें कुरीतियाँ और फिजूलखर्चीका सर्वथा त्याग करें; चोर, बदमाश, ठग, नीच और धूर्तोंसे बचनेके लिये बुद्धि-विवेकपूर्वक कुशलतासे काम लें; बीमारी, मृत्यु और आपत्तिसे ग्रस्त मनुष्योंके हितके लिये उनकी निःस्वार्थभावसे सेवा करें। विद्या, बुद्धि, बल, तेज और शिल्पज्ञानकी वृद्धिके लिये तत्परतासे यथोचित चेष्टा करें, सबको अपने अनुकूल बनानेके लिये उनके अवगुणोंकी ओर ध्यान न देकर उनके सच्चे गुणोंका वर्णन करते हुए उनके परमहितकी चेष्टा करें एवं क्षमा, दया, शान्ति, समता, संतोष, सरलता, श्रद्धा, प्रेम आदि गुणोंको तथा सत्संग, स्वाध्याय, कथा-कीर्तन, तीर्थ, सेवा, तप, दान आदि सदाचारोंको अमृतके समान समझकर कर्तव्य और निष्कामभावसे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक धारण करें।